THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180212
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H894.1 K61K Accession No. G. H. 3178

Author किशिनचन्द 'बेविस'

Title कवि-श्री माला : सिन्धी १९५२

This book should be returned on or before the date last marked below.

कवि-श्री माला

* सिन्धी *

कवि :

किशिनचन्द 'बेवसि'

सम्पादक–अनुवादक

देवदत्त कुन्दाराम शर्मा

"भारत सरकार की ओर से भेंट"

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक :

मोहनलाल भट्ट
मन्त्री :
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण—३०००
मई, १९६२
मूल्य—रु. २/-

● ● ●

Checked 1969

मुद्रक :

मोहनलाल भट्ट
राष्ट्रभाषा प्रेस,
हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

आमुख

हर्षका विषय है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा अपने कार्य कालके २५ वर्ष सन् १९६१ में पूरे कर रही है। इस उपलक्ष्यमें मनाये जानेवाले रजत-जयन्ती महोत्सवके अवसर पर सभी भारतीय भाषाओंके मान्य कवियोंका तथा उनके उत्कृष्ट काव्यका परिचय 'कवि-श्री माला' की पच्चीस पुस्तकोंमें हिन्दी-गद्यानुवाद सहित प्रकाशित करनेकी योजनाके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष आ रहा है।

यद्यपि किसी भी भाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जकका निश्चय करना एक कठिन कार्य है, फिर भी अपनी सीमाओंको ध्यानमें रखते हुए गण्यमान्य उन-उन भाषाओंके विद्वानोंकी रायसे ही चुनावका कार्य सम्पन्न किया गया है।

प्रत्येक पुस्तकके आरम्भमें जिस भाषाके कविकी रचनाओंका चयन किया गया है, उस भाषाके साहित्यका परिचय और कवि विशेषका परिचय दिया गया है। जिस भाषाके दो कवियोंका चुनाव किया गया है, उनका चुनाव करते समय सन् १९२० से पूर्वका साहित्य और १९२० से बादका साहित्य--इस तरहसे एक विभाजन-रेखा ध्यानमें रखी गई है। इसका कारण यह है कि लगभग सन् १९२० के पूर्वके तथा १९२० के बादके साहित्यमें प्रवाहित विचार-धारामें एक विशेष प्रकारका अलगाव-सा पाया जाता है।

सिन्धीमें कुछ ऐसी विशिष्ट ध्वनियाँ हैं जो देवनागरी लिपिमें नहीं हैं। उन ध्वनियोंको प्रस्तुत पुस्तकमें निम्नलिखित रूपसे व्यक्त किया गया है :—

ग़—सघोष, अल्पप्राण, अन्तःस्फुटित, कोमल-तालव्य, स्पर्श ध्वनि; यथा—ग़ोठु।

ज़—सघोष, अल्पप्राण, अन्तःस्फुटित, कठिन-तालव्य, स्पर्श संघर्षी; यथा—अज़ु।

ड़—सघोष, अल्पप्राण, अन्तःस्फुटित, मूर्धन्य, स्फोटक स्पर्श; यथा—केड़ो।

ब़—सघोष, अल्पप्राण, अन्तःस्फुटित, द्व्यौष्ठ्य स्पर्श; यथा—ब़चो।

श्री देवदत्त कुन्दाराम शर्माजीने प्रस्तुत पुस्तकमें संकलित साहित्यको चुनने, काव्याशको सम्पादित तथा अनूदित कर सारी सामग्रीको इस रूपमें प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया है। पुस्तकमें संकलित चित्र का ब्लॉक सम्पादक, 'हिन्दुस्तान' (सिन्धी दैनिक), बम्बईके सद्प्रयत्नोंसे उपलब्ध हुआ है। संग्रहकी आवरण डिजाइनको बनवा देनेमें श्री व्ही. एन. अडारकरजी (डीन, सर जे. जे. इन्स्टीट्यूट आफ अप्लाईड आर्ट, बम्बई) का उदार सहयोग मिला है, उसके लिए समिति सभीकी आभारी है।

इसके अतिरिक्त छपाई तथा अन्यान्य दृष्टियोंसे जिन-जिनका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है, उनके प्रति भी समिति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

आशा है, प्रस्तुत संग्रह पाठकोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

मन्त्री,
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

अनुक्रमणिका

	पृष्ठांक
सिन्धी-साहित्य-परिचय	१
कवि-परिचय	२५
काव्य-सञ्चय	४१

कवि-श्री माला

सिन्धी

किशिनचन्द 'बेवसि'

सिन्धी साहित्य परिचय

सिन्धी भाषा
और
उसका साहित्य

• • •

अब तक सिन्धी भाषामे सिन्धी साहित्यके इतिहासपर कोई पुस्तक प्रकाशित नही हुई। श्री सिदीक मुहम्मद मेमणने काव्यके इतिहासके दो भागोमे पुस्तके लिखे है, जिसका साराश 'सिन्धके सूफी सन्त शाह अब्दुल लतीफ' की पुस्तिकामे दे दिया गया है, लेकिन इसमे १९२० के पहलेके कवियोका ही आभास मात्र है। १९२० से लेकर आज तक सिन्धी भाषाके कइयों कवि इस क्षेत्रको सर्वाग समृद्ध बना रहे है। लेकिन १९०० ई से लेकर आज तकके कालको हम हिन्दीकी तरह गद्यकाल ही कहेगे, क्योकि इस अवधिमे पद्यकी अपेक्षा गद्यका ही बोलबाला रहा है। आज सिन्धीमे पद्य भी प्रचुर मात्रामे उपलब्ध है, फिर भी हमे कहना ही पडेगा कि यह युग 'गद्यका युग' अथवा आधुनिक युगके नामसे ही सम्बोधित किया जा सकता है।

गद्यकाल का आरम्भ :

अँग्रेजोने सिन्धपर १८४३ ई. मे विजय पाई। अन्य आवश्यक कार्योंके साथ उनका ध्यान साहित्यकी ओर भी आकृष्ट हुआ, लेकिन उन दिनों सिन्धी भाषाके लिए कोई निश्चित लिपि निर्धारित न थी। मुसलमान इस भाषाको फारसी अथवा अरबीमे

लिखा करते थे और ब्राह्मण नागरीमे, स्त्रियां गुरुमुखीमे तथा व्यापारी मुण्डा (बिना मात्राओ वाली) लिपिमे लिखा करते थे। १८५३ मे सिन्धी भाषाके लिए लिपि निर्धारित की गई और तबसे सिन्धी भाषामे साहित्य निर्माणके छिटपुट प्रयत्न चल रहे है। सर्वप्रथम शिक्षा विभागकी ओरसे पाठ्य पुस्तकोकी रचना हुई और कुछ पुस्तके हिन्दी और फारसीसे अनूदित की गई।

१८५३ से १९०० तक जो साहित्य निर्माण हुआ, उसे हम सक्रमण कालीन साहित्य कह सकते है। विद्वानोका मत है कि आरम्भमे गद्यकी कई पुस्तके देवनागरी लिपिमे लिखी गई थी,परन्तु अरबी लिपि सिन्धीकी लिपि बन जानेके कारण देवनागरी लिपिको बडी ही क्षति पहुँची। अब सारा सरकारी कार्य इस लिपिमे होने लगा। अतः नौकरियाँ भी उन्हे मिलने लगी, जो इस लिपिके जानकार थे। इन्ही कारणोसे देवनागरीमे हस्तलिखित पुस्तके सडने लगी अँग्रेजोके समयमे जो देवनागरीमे पुस्तके छपी, उनमेसे निम्नलिखित कुछ पुस्तकोका कभी-कभी दर्शन हो जाता है —

(१) 'सिन्धी-इग्लिश डिक्शनरी'—कैप्टन स्टैक (बम्बईमे मुद्रित) १८५५
(२) 'सिन्धी बोलीअ जो ग्रामरु' " " " "
इसी व्याकरणके अन्तिम पृष्ठोपर 'आखाणी राइ दियाच ऐ सोरठि जी' छपी है, जो शायद सिन्धी साहित्यकी पहली कहानी है।
(३) 'मती' (गॉस्पल आफ मैथ्यू) का सिन्धी अनुवाद—कैप्टन स्टैक, १८५०
(४) 'इग्लिश-सिन्धी डिक्शनरी' (कैप्टन स्टैक) बम्बई, १८४९
(५) 'सिन्धी बोलीअ जो ग्रामरु' (डा. ट्रिम्प, लन्दन और लीपजिगमे छपी, १८७२) अरबी लिपि बननेके बाद भी कुछ पुस्तके देवनागरी लिपिमे छपी।
(६) 'इग्लिश-सिन्धी डिक्शनरी' (ल. व. पराजपे), १८६५
(७) 'सिन्धी-इग्लिश डिक्शनरी' (रेवरड शर्ट, उधाराम थांवरदास औस, स. फ. मिर्जा, १८७९)
(८) 'अखर धातू' (सिन्धीके सस्कृत मूल धातु) रेवरंड शर्ट
(९) 'सिन्धी ग्रामरु' (श्री झमटमल), १८९२
(१०) 'Dictionary of Sindhi derivatives' (झमटमल नारुमल), १८९२ आदि।

इसके अलावा सिन्धी चौथी कक्षा तककी पाठ्य पुस्तके सरकार द्वारा देवनागरी लिपिमे भी छपती रही।

प्रियतम धर्म सभा शिकारपुरवालोने भी देवनागरी लिपिमें कन्याओके लिए पाठ्य-पुस्तके प्रकाशित कराईं।

सन् १८५४ मे गुलाम हुसेन मोहम्मद कासिम क़ुरेशीने 'भगे जमीदार जी गाल्हि', सैय्यद मीरां मुहम्मद शाहने 'सुधातूरे ऐ कुधातूरे जी गाल्हि' (१८५५)

तथा 'मुफीद अल सबिया' (१८६१) नामक पुस्तके लिखी। ये तीनो पुस्तकें हिन्दीसे अनूदित की गईं थी। मुन्शी नन्दीराम मीरानीने 'तारीख़ मैसूमी' का फारसीसे अनुवाद किया था। १८६५ मे सिन्धके डिप्टी एजूकेशन इन्स्पेक्टर श्री नारायण जगन्नाथ (महाराष्ट्र निवासी) ने 'सिन्धु जो निरिवारु' नामक मौलिक पुस्तक लिखी। १८६२ ई मे दीवान कौड़ोमल चन्दनमलने 'कोलम्बस जी तारीख़' नामक पुस्तकका अँग्रेजीसे अनुवाद किया और स्त्री शिक्षाके लिए 'पको पहु' नामक एक मौलिक पुस्तक लिखी। १८७० ई. मे साधू नवलराय तथा मुन्शी उधाराम मीरचन्दानीने 'रासेलास' नामक पुस्तकका अँग्रेजीसे अनुवाद किया तथा मुन्शी उधारामने 'ईसप जूँ आखाण्यूँ' नामक पुस्तक भी लिखी। १८६४ से १८७० तक दीवान केवलरामने बडी सुन्दर भाषामे ग्रन्थ 'सूखिडी', 'गुलकन्द' और 'गुल शक्कर' नामक तीन मौलिक ग्रन्थ लिखे। १८७९ मे मिर्जा कलीच बेगने 'Bacon's Essays' का 'मकालात अल हिकमत' के नामसे अनुवाद किया।

१८८० से लेकर १९१४ तक जिन-जिन विद्वानोने रचनाएँ की, उनको भी हम भूल नही सकते। यह काल 'अनुवाद काल' था। शिकारपुरके श्री पोकरदास थावरदास, सक्खरके श्री हरीसिंह तथा हैदराबाद (सिन्ध) के श्री दिनोमल बसरमलने प्रकाशकोके रूपमे कई पुस्तके अनूदित करवाकर छपवाई। उनमेसे कुछ चुनी हुई पुस्तके हातिमताई, चार दरवेश, गुलबकावली, ताजअल मलूक, आदि है। इसके अलावा श्री ठाकुरदास आसूदोमलने 'चन्द्रकान्ता' तथा 'भूतनाथ' का प्रकाशन करनेके लिए अपना प्रेस खोला। ये पुस्तके खूब बिकी। 'चन्द्रकान्ता' और 'भूतनाथ' एक साथ प्रकाशित न होकर कई भागोमे प्रकाशित हो रही थी, लोगोमे इतना धैर्य नही था कि वे छपने तक उन भागोकी प्रतीक्षा करें। अत. कई लोगोने इन उपन्यासोको पढनेके लिए हिन्दी सीखना आरम्भ कर दिया। इसमे अत्युक्ति न होगी कि इन्ही उपन्यासोको पढनेके लिए कई सिन्धियोने हिन्दी सीखी। लेकिन साहित्यकी दृष्टिसे इनका इतना मूल्य नही था।

प्रथम उत्थान-काल (कौड़ोमल-कलीच बेग काल) :

श्री कौडोमल और मिर्जा कलीच बेगके साहित्य-क्षेत्रमे पदार्पण करनेसे ही साहित्यमे नव-चेतना आई। आरम्भमे श्री कौड़ोमल चन्दनमल (मिर्या निवासी) ने सरकारकी ओरसे पाठ्य पुस्तके लिखी। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि श्री कौडोमलजी ब्रह्म समाजसे प्रभावित थे। साधू नवलराय तथा साधू हीरानन्दजी (भ्रातृ द्वय) ने ही सिन्धमे ब्रह्म समाजकी नीव रखी और श्री कौडोमलजी उनके अभिन्न मित्र थे। उन दिनो इन भ्रातृ द्वयने यूनियन ऐकेडमी नामक हाइस्कूलकी स्थापना की, जिसमे बंगालके प्रसिद्ध ब्रह्म-समाजी श्री ब्रह्म बान्धव वन्द्योपाध्याय (जो बादमे क्रिश्चियन हो गए थे।) प्रचारक तथा अध्यापक होकर

आए थे। इनकी प्रेरणासे ही श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बड़े भाई श्री सतीशचन्दजी हैदराबादमे सेशन्स जज होकर आए थे। उन्होने वहाँ ब्रह्म-समाजका उद्घाटन मुहूर्त किया था। इनके बाद श्री केशवचन्द्र सेनके भतीजे श्री नन्दलाल सेन आए। ऐसे महानुभावोकी प्रेरणासे ही सिन्धीके लेखक तैयार हुए।

श्री कौड़ोमलजीने लगभग ६० पुस्तके लिखी, जिनमे कई तो अनूदित है। बाकी १०-१२ पुस्तके उनकी मौलिक रचनाएँ है। उनकी सबसे बडी सेवा है सिन्धी भाषाको साहित्यिक अभिव्यञ्जनाके अनुरूप बनाना। यद्यपि उनके पहले राजर्षि दयाराम गिदूमल (सेशन्स जज) तथा श्री केवलरामने इस दिशामे प्रयत्न किए; फिर भी सफलता श्री कौडोमलको ही मिली। साधू नवलराय तथा साधू हीरानन्दके प्रभावके कारण श्री कौडोमलजी स्त्री शिक्षाके प्रेमी बन गए, अतः उन्होने 'आर्य नारी चरित्र' तथा 'पको पहु' लिखकर इस दिशामे सर्वप्रथम स्तुत्य प्रयास किया।

यदि श्री कौडोमलजी विभिन्न स्थानोसे गुरुमुखी लिपिमे लिखे हुए श्लोकोको एकत्रित करके न छपवाते, तो 'सामी' नामसे प्रसिद्ध सामी चइनरायका काव्य न मालूम किस अन्धकारमय गर्तमे पडा रहता। श्री कौडोमलने बकिम बाबूकी तीन छोटी कहानियोका बडी सरल और सुन्दर सिन्धीमे अनुवाद किया।

मिर्जा कलीच बेग :

मिर्जा कलीच बेगकी गणना सर्वतोमुखी प्रतिभा वाले साहित्यकारोमे की जा सकती है। इन्होने अपने जीवन-कालमे कम-से-कम दो सौ पुस्तके लिखी। यद्यपि इनकी अधिकाश पुस्तके अनुवाद ही है, फिर भी इनकी मौलिक रचनाएँ भी कम नही है। यदि इन्होने 'रुबाइयात उमर खय्यामका' रुबाइयोमे ही अनुवाद किया तो 'मोत्युनिजी दबुली' भी रुबाइयोमे ही लिखी। इन्हे काव्य-जगत्मे प्रथम रुबाईकार होनेका गौरव प्राप्त है। इन्होने दो मौलिक उपन्यास 'दिलाराम' (१८८८) तथा 'जीनत' (१८९०) लिखे। कुछ विद्वानोका मत है कि ये उर्दूके अनुवाद है, फिर भी इनका रग, रूप और ढाँचा बिलकुल सिन्धी ही लगता है।

उन दिनो अहमद खान जल्बाणीने 'गुलबकावली' तथा 'नीहु निभावणु' दो उर्दू उपन्यास (१८९० मे) उर्दूसे अनूदित किए। आखूद लुत्फ अल्लाहने 'गुलु खन्दान' और 'जान आलिम' नामक उपन्यास लिखे। मुहम्मद सिदीक मुसाफिरन 'मुमताज दमसाज', 'महरूर बानू' तथा 'गुलबदन' नामक उपन्यास लिखे। दीवान प्रीतमदास हुकूमत रायने 'अजीब भेट' नामक मौलिक उपन्यास लिखा।

श्री लालचन्द अमर दिनोमलने 'हुर मखीअ जा' (१९०१) तथा 'चोथि जो चडु' (१९०५) नामक दो मौलिक उपन्यास लिखे। श्री भेरुमल महरचन्द आदवाणीने 'आनन्द सुन्दरी' तथा 'मोहिनी बाई' दो मौलिक उपन्यास लिखे। इस कालका अन्तिम मौलिक उपन्यास डॉ. गुरबक्शाणी द्वारा लिखित 'नूरजहान' है।

आरम्भिक कालके नाटक :

नाटककारोंमें श्री मिर्जा कलीच बेगका नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। इन्होंने कई नाटक लिखे, जिनमेसे 'लैला मजनूँ' (१८८०) और 'खुरशीद' नामक दो नाटक रङ्गमञ्चपर भी खेले जा चुके हैं। इन्होंने १८९६ मे 'शकुन्तला' नाटकका भी अनुवाद किया। श्री कौडोमलने १८८८ मे हर्षदेव रचित 'रत्नावली' नामक नाटकका बडी सुन्दर और मुहावरेदार भाषामे अनुवाद किया।

१८९४ मे डी. जे सिन्ध कालेज (करॉची) के प्रिन्सिपल श्री जैकसन तथा पारसी प्रोफेसर पादशाके प्रयत्नोसे 'सिन्ध कालेज अमेच्युअर ड्रॉमॅटिक सोसाइटी' की स्थापना हुई और सिन्धीका पहला रङ्गमञ्च स्थापित हुआ। इस रङ्गमञ्चपर खेलनेके लिए सन् १८९४ ई मे श्री जेठानन्द खिलणदासने 'नल दमयन्ती' नामक सर्वप्रथम नाटक लिखा।

इसके बाद इस रङ्गमञ्चपर खेलनेके लिए दीवान लीलारामसिहने 'हरिश्चन्द्र' (१८९४) और 'द्रौपदी' (१९०५) नामक दो नाटक लिखे, जिनका कथानक महाभारतसे लिया गया था। उन्होने 'रामायण' (१८९८) नामक नाटक लिखा, जो जनताको बडा प्रिय लगा। इनके अलावा 'सुर्जन राधा' (१८९५) और 'मोहन तारिका' नामक दो मौलिक नाटक और लिखे।

इसके बाद इसी रङ्गमञ्चपर खेलनेके लिए मिर्जा कलीच बेगने शेक्सपियर के कई नाटकोका अनुवाद किया, लेकिन उनके पात्रोके नाम तथा स्थान वदलकर उन्हे सिन्धी रूप दे दिया गया। ये नाटक इस प्रकार हैं —

(१) "हुस्ना दिलदार" (१८९७) 'Merchant of Venice' का अनुवाद
(२) "शाह एलिया" (१९००) 'King lear' का अनुवाद
(३) "फेरोज दिल अफरोज (१९०५) लॉर्ड लिटनके उपन्यास 'Night and Morning' का नाटकीकरण
(४) "शमशाद मर जाना" (१९०८) 'Cymbelive' का अनुवाद।
(५) "अजीज ऐ शरीफ" (१९०९) 'Two Gentlemen of Verona' का अनुवाद
(६) "गुलजार ऐ गुलनार" (१९०९) 'Romeo and Juliet' का अनुवाद
(७) "शहजादो बहराम" (१९११) 'Hamlet' का अनुवाद
(८) "नेकी ऐ वदी" (१९११) एक उर्दू नाटकसे अनूदित

इसके अलावा श्री भेरूमल महरचन्दने 'किग जॉन' (King John) का तथा शेवासिह अजवाणीने शेरीडनके 'पिझॅरो (Pizzaro) नामक नाटकका सन् १९२० ई. मे अनुवाद किया। इस प्रथम उत्थान कालके मौलिक नाटककार

श्री खानचन्द दर्यानी भी थे, जिन्होने 'रत्ना', 'ज़मींदारी जुल्म,' 'ज़माने जी लहिर' तथा 'बुख जो शिकारु' नामक चार मौलिक नाटक लिखे। श्री लालचन्द अमर दिनोमलने सामाजिक बुराइयोका दिग्दर्शन करानेके लिए 'नक्दु धर्मु' (१९०६) तथा 'सेण कीन वेण' नामक दो मौलिक एकाकी लिखे।

सिन्धी भाषाका साहित्यिक रूप :

मै पहले ही लिख चुका हूँ कि राजर्षि दयाराम गिदूमल तथा श्री कौडोमलने सिन्धी भाषाको साहित्यिक रूप देनेका प्रयत्न किया, किन्तु इस दिशामे श्री भेरूमल महरचन्द तथा उनसे भी बढकर श्री परमानन्द मेवारामने सिन्धी भाषाको सबल तथा साहित्यिक अभिव्यञ्जनाके योग्य बनानेका सफल प्रयत्न किया। इन्होने ब्रह्म-बान्धव वन्द्योपाध्यायके साथ ईसाई धर्म ग्रहण किया और उस धर्मके प्रचारके लिए 'जोति' नामक सिन्धी साप्ताहिक पत्रिका १८९६ मे निकाली, जो ४० वर्षो तक सिन्धी भाषाकी सेवा करती रही। ईसाई धर्मकी बातोके अलावा कई अन्य विषयोपर भी सुन्दर लेख छपते रहे, जिनकी भाषा बडी प्राञ्जल और मार्जित रहती थी। हास्य रसके कई छोटे-छोटे चुटकुले उसमे छपते थे। उन सब चुटकुलोका सग्रह कर १९१२ मे 'दिलबहार' नामक पुस्तक (चार भागो) मे प्रकाशित की गई। इसके अलावा जो सुन्दर निबन्ध 'जोति' मे छपते, उनका भी सकलन श्री परमानन्दजीने 'गुल फुल' नामक पुस्तक (दो भागो) मे प्रकाशित किया।

सिन्धी भाषाकी सबसे बड़ी सेवा जो श्री परमानन्द मेवारामजीने की, वह थी उनकी 'सिन्धी कोष' की देन। इसके लिए उन्होने अपने जीवनका बडा भाग अर्पित किया। सिन्धी भाषाका यदि कोई प्रामाणिक कोष है, जिसे सनदके रूपमे स्वीकार किया जाता है, तो वह इन्हीका 'सिन्धी कोष' है। इन्होने एक 'अँग्रेजी-सिन्धी कोष' भी तैयार किया।

धार्मिक साहित्य :

सिन्धी भाषामे धार्मिक-साहित्य भी काफी मात्रामे प्रकाशित हुआ है।

करॉचीके श्री तेजूराम शर्माकी 'सनातन धर्म पत्रिका' की ओरसे श्रीमद्भगवद् गीता, श्रीमद्भागवत, तुलसीकृत 'रामायण' आदि कई धार्मिक पुस्तकें प्रकाशित हुई। उन्होने कुछ सामाजिक उपन्यास भी प्रकाशित कराये।

सबसे पहले राजर्षि दयाराम गिदूमलने सिन्धीमे गीता तथा पातञ्जल योग दर्शनपर विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखी। सिख साहित्यके जप जी साहब तथा सुखमनी साहबपर भी टीकाएँ लिखी। इसके अलावा सात बडी-बडी जिल्दोमे 'मन जा चह-बूक' नामक पुस्तक लिखी, जिसमे पौर्वात्य और पाश्चात्य दर्शन-शास्त्रोपर बड़ी बारीकीसे विचार-विनिमय किया गया है।

हैदराबाद गुरु सगत की ओरसे सिख धर्मके विद्वान् श्री फतहचन्द मेघराजने श्री 'गुरु' ग्रन्थ साहबका 'गुरुवाणी' नामक मासिक पत्रिकाके माध्यमसे ३० वर्षोंके अथक् परिश्रमसे सिन्धीमे अनुवाद प्रकाशित किया। भारत-विभाजनके पहले वह अप्राप्य हो गया था, अत श्री लालचन्दजी पुनवाणीने बम्बई गुरु सगत द्वारा उसका पुनर्नवीकरण किया है।

तीसरे है साधु वास्वाणीजी, जिन्होने विभाजनके पहले ही श्रीमद्भगवद् गीता तथा सन्तो और ग्रन्थ साहबकी वाणीपर प्रचुर मात्रामे साहित्य प्रकाशित किया था और विभाजनके बाद भी सेन्ट मीरा कालेज, पूनाकी ओरसे इस कार्यको सुचारू रूपसे निभा रहे हे।

प्रिन्सिपल नानकराम थधाणी द्वारा किया गया श्रीमद्भगवत् गीता का पद्य बद्ध अनुवाद बडा ही सुन्दर बन पड़ा है। प. द्वारका प्रसाद यजुर्वेदीने लोकमान्य तिलकके 'गीता रहस्य' सुन्दर अनुवाद किया है।

साराश यह कि सिन्धी भाषामे मुसलमानी तथा हिन्दू धार्मिक-साहित्य प्रचुर मात्रामे उपलब्ध है।

प्रथम उत्थान-काल (सिन्धी भाषाकी पत्र-पत्रिकाएँ) :

सिन्धी पत्र तथा पत्रिकाओने भी सिन्धी साहित्यकी अच्छी सेवा की है। सर्वप्रथम सन् १८८४ ई मे 'सिन्धु सुधार' नामक पत्र निकला। १८९० मे साधु हीरानन्दने 'सरस्वती' नामक मासिक पत्रिका निकालना शुरू की, जिसमे धार्मिक, सामाजिक, चारित्रिक तथा शैक्षणिक विषयोपर सुन्दर निबन्ध छपते थे। १८९१ मे श्री लेखराज तिलोकचन्द थधाणीने 'प्रभात' नामक साप्ताहिक पत्रिका निकालनी आरम्भ की। लगभग इन्ही दिनो करॉचीसे 'सनातन धर्म पत्रिका' (मासिक) प्रकाशित होने लगी। १८९६ मे श्री परमानन्द मेवारामने 'जोति' नामक पाक्षिक समाचार पत्र निकाला। १९१२ मे प. लोकराम नयनाराम शर्माने देवनागरी लिपिमे 'सिन्धु भास्कर' नामक मासिक पत्रिका निकालनी आरम्भ की। उन्ही दिनो श्री कुन्दनमल दीपचन्द शिवदासानीने 'आनन्द' नामक धार्मिक पत्रिका निकाली। श्री तोलाराम बालाणीने 'माता' नामक राष्ट्रीय पत्रिका निकाली।

राष्ट्रीय साहित्य :

इस कालमे लोकमान्य तिलक द्वारा लिखित पुस्तिकाके अनुवादके अतिरिक्त कोई साहित्य उपलब्ध नही है। वह छोटी पुस्तिका थी। पुस्तक छपते ही अनुवादक प गोवर्धन शर्मा, प्रकाशक श्री चेटूमलजी तथा प्रिन्टर श्री वीरुमलजीको गिरफ्तार कर लिया गया। परिणामस्वरूप लेखकको ६ वर्ष तथा दो अन्य मित्रोको ढाईसे तीन वर्षके कठोर कारावासका दण्ड दिया गया।

निबन्ध साहित्य :

सिन्धीमे निबन्ध-साहित्य इतनी प्रचुर मात्रामे उपलब्ध नही है, फिर भी श्री लीलाराम प्रेमचन्द तथा श्री दयाराम वसणमल मीरचन्दानीने कई लेखकोके निबन्ध एकत्रित कर सन् १९०७ मे 'गुलदस्ता' नामक निबन्ध-सग्रह छपवाया।

इस कालके निबन्धकारोमे निम्नलिखित विद्वानोके नाम उल्लेखनीय है —

१—राजर्षि दयाराम, २—श्री केवलराम सलामतराय, ३—श्री नारायण जगन्नाथ वैद्य (महाराष्ट्र), ४—श्री उधाराम थादरदास, ५—साधु नवलराय, ६—साधु हीरानन्द, ७—श्री कौडोमल, ८—मिर्जा कलीच बेग, ९—श्री परमानन्द मेवाराम, १०—श्री निर्मलदास फतहचन्द, ११—श्री भेरूमल महरचन्द आदि।

द्वितीय उत्थान-काल (जेठमल-लालचन्द युग) **सन् १९१४—१९४७ :**

द्वितीय उत्थान-काल सिन्धी साहित्यके लिए उत्साहवर्धक काल माना जाता है। सन् १९१४ ई मे सिन्धी साहित्य सोसाइटीकी नीव रखी गई। श्री जेठमल परसराम गुलराजाणी तथा श्री लालचन्द अमर दिनोमल जगत्यागी इसके मुख्य कार्यकर्ता थे। इस सोसायटीकी ओरसे प्रति माह एक-न-एक सुन्दर पुस्तक छपती थी।

राजर्षि दयारामके सुपुत्र श्री केवलरामजीने एक बडी रकम 'सिन्धी लायब्रेरी' नामक सस्थाको एक सौ सुन्दर और अन्य उत्तम पुस्तकोके लिए प्रदान की। श्री जेठमलजी इस सस्थाकी आत्मा थे। श्री जेठमलजीका जन्म १८८६ मे हैदरावादमे हुआ था। यद्यपि इन्होने मैट्रिक तक ही अध्ययन किया था, फिर भी ये प्रोफेसर बन गए। इन्होने सिन्धी-साहित्यकी अनुपम सेवा की। सिन्धी लायब्रेरीकी ओरसे एक सौ पुस्तके प्रसिद्ध करानेका सकल्प इन्होने पूरा किया। ये जैसे अनुपम लेखक थे, वैसे ही अनोखे व्याख्याता भी थे। ये थियॉसॉफिस्ट थे। डॉ एनीबेसण्टके समयमे इन्होने अपने व्याख्यानो तथा 'भारतवासी' नामक पत्रिका द्वारा सारे सिन्धमे एक नए उत्साहकी लहर फैला दी। आप हिन्दीके भी अच्छे जानकार थे। सूरदासके कृष्ण सम्बन्धी पदोसे इनको बडा प्रेम था। वे दिन भूलाये नही जा सकते, जब थियासॉफिकल लाजमे कृष्ण परक पद गवा-गवाकर उनकी सुन्दर व्याख्या करते थे। शेक्सपियरके दो उपन्यासोका, 'हैमलेट' और 'तूफान' के नामसे अनुवाद किया। आपने जर्मनीके विद्वान गठीके 'फाऊस्ट' का अनुवाद भी किया। इसके अलावा आपने कई धार्मिक पुस्तके भी लिखी, जिनमे 'मौतु आहेई कोन', 'मार्ग जोती ऐ कर्मु', 'मौतु हिकु बहानो', 'कर्म जो नेमु', 'पूरब जोती', 'जप जी साहबपर टीका" आदि मुख्य है। आपने दूसरे भी कई ग्रन्थ लिखे। आपकी भाषा प्राञ्जल तथा बडी ओजस्विनी थी। विभाजनके बाद १९४८ मे आपका देहान्त बम्बईमे हुआ।

लालचन्द अमर दिनोमल :

श्री लालचन्दजी भी इस कालके मुख्य स्तम्भ माने जाते है। आपका जन्म २५ जनवरी १८८५ मे हैदराबादमे हुआ था। आपको साहित्यसे बडा प्रेम था। आप आजीवन साहित्यकी साधनामे लगे रहे। श्री जेठमलजीके साथी बनकर आपने 'सिन्धी साहित्य सोसायटी' और 'सिन्धी लाईब्रेरी' के लिए खूब पुस्तके लिखकर उनका हाथ बटाया। आपने उपन्यास, नाटक,कहानियाँ,निबन्ध तथा समालोचनात्मक पुस्तके लिखी। १९२३ मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर सोसायटीका जन्म हुआ। साहित्य प्रकाशनके साथ-साथ रवि बाबूके नामपर रगमचका भी आयोजन हुआ। इस रगमचपर खेलनेके लिए इन्होने 'उमर मारुई' नामक नाटक लिखा, जो बडी सफलता पूर्वक खेला गया। सिन्ध विभाजनके बाद आप बम्बई आए। यहाँपर भी इनकी साहित्य साधना चलती रही। आजीवन अध्यापनका कार्य करते रहे। बम्बईमे भी 'हाइस्कूल फार सिन्धीज' तथा 'कर्वे यूनिवर्सिटी' के लिए परीक्षार्थी तैयार करते रहे। सन् १९२२ मे गाँधीजीके आन्दोलनके समय थामा जेलमे रहकर भी इन्होने कई पुस्तके लिखी। इनका व्यक्तित्व बडा प्रभावशाली था। ६९ वर्षकी अवस्थामे आपका सन् १९५४ ई मे बम्बईमे स्वर्गवास हुआ।

रचनाएँ —सिन्धके १–शाह, २–सचल, ३–गुल इन तीन कवियो पर आपने समालोचनात्मक निबन्ध लिखे। इन निबन्धोके अलावा विभिन्न विषयोपर भी आपने कई निबन्ध लिखे है।

अन्य रचनाएँ —१–चोथि जो चर्ड, २–सदा गुलाबु, ३–सच ता सदिके, ४–सोन वर्ण्यु दिल्यूँ, ५–किशिनी अ जो कण्टु, ६–फुलनि मुठि, ७–ब्रूनो, ८–दुखनि दधी जिन्दगी, ९–हुर मखीअ जा, १०–रामु बादिशाहु, ११–प्रेम जो बलु, १२–शाहाणो शाहु, १३–हजरत मुहम्मद रसूल, १४–सचलु सूँहारो, १५–मुसाफिरी अ जो मजो, १६—मातमियुनि खे दिलदारी।

नाटक :—१–उमरु मारुई, २–सुहिणी मेहारु, ३–सेणकी वेण, ४–नकदु धर्मु।

अन्य ग्रन्थ :—१–सुरु केदोरो, २–हिंदू नार्युनि सा वैल, ३–लज्जावती, ४–शाइराना गुल, ५–माणिक, मोती, लाल आदि तथा अन्य कई ग्रन्थ लिखे। उनमेसे अभी कुछ अप्रकाशित है।

इस कालके अन्य लेखक :

डॉ होतचन्द मूलचन्द गुरबक्षाँणी (जन्म १८८३, मृत्यु १९४६) : ये डी. जे सिन्ध कालेजके प्रिन्सिपल थे। आपने कालेजो तथा यूनिवर्सिटीकी परीक्षाओके लिए सिन्धी भाषाको स्थान दिलाया। आपने ४ जिल्दोमे 'शाह अब्दुल लतीफ़' पर टीका-ग्रन्थ लिखे।

भेरूमल महरचन्द (जन्म १८७५, मृत्यु १९५०) : यद्यपि इनका वर्णन पहले हो चुका है, फिर भी इस उत्थान-कालमे आपने भी कई पुस्तकें लिखी, जिनमेसे मुख्य है, 'सिन्धी बोलीअ जी तारीख', अन्कल टॉम्स केबिन (Uncle Tom's Cabin) का 'गोलनि जा गून्दर' नामसे सक्षिप्त अनुवाद तथा 'सिन्धु जो सैलानी'।

मुहम्मद सिदीक़ मेमण : आप ट्रेनिग कालेजके प्रिन्सिपल थे। आपकी रचनाएँ इस प्रकार है --१–तारीख ताहिरीअ जो इन्त खाबु, २–मज़मून नवीसी, ३–हयातीअ जो दौरु, ४–सिन्धीअ जी अदबी तारीख (केवल पद्य)।

आचार्य गिदवाणी (जन्म १८९०, मृत्यु १९३५) आपका पूरा नाम है आसूदोमल टेकचन्द गिदवाणी। ये आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीसे एम. ए हुए थे। इण्डियन एज्यूकेशनल सर्विसमे इलाहबादके सरकारी कालेजके कई वर्षोंतक प्रोफेसर रहे। उसके बाद गाँधीजीके १९२१ वाले आन्दोलनमे भाग लेनेके कारण जेल भी गए तथा अहमदाबादके राष्ट्रीय कॉलेजके प्रिन्सिपल होनेके कारण आचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए।

श्री गिदवाणीजीने अन्य पुस्तकके अलावा कालिदासके 'रघुवश,' 'मालविकाग्निमित्र' तथा 'विक्रमोर्वशी'का सिन्धीमे सक्षिप्त अनुवाद प्रस्तुत किया और 'रथ यात्रा' नामक पुस्तक लिखी। इन पुस्तकोके अतिरिक्त इन्होने कुछ निबन्ध भी लिखे है।

प्रोफेसर नारायणदास रतनमल मल्काणी एम ए उत्तीर्ण करनेके बाद आचार्य कृपालानीके साथी आप मुजफरपुर कालेज (बिहार) मे कई वर्षो तक प्रोफेसर रहे। सन् १९२१ ई मे नौकरी छोडकर आप गाँधीजीके आन्दोलनमें शामिल हुए और कई बार जेल हो आए। गाँधीजीकी आज्ञानुसार १९३० मे सिन्धमे आप रचनात्मक कार्यके लिए लौट आए। वर्षो तक आप सिन्ध राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अध्यक्ष रहे। आपकी भाषा बडी ही प्राञ्जल और मँजी हुई है। यदि आपको ग्रामीण भाषाका विशेष ज्ञाता कहे, तो अत्युक्ति न होगी। आजकल आप राज्य-सभा (एम पी)के सदस्य है तथा भारत सेवक समाजके मुख्य स्तम्भ माने जाते है।

रचनाएँ --अनूदित ग्रन्थ --१. हिन्द स्वराज्य, २ महात्मा गाँधीअ जी आत्म कहाणी, ३ जवाहिर जीवनी।

मौलिक --'गोठाणी चहिर' मे ग्रामीण भाषामे आपने ग्रामीणोका दिग्दर्शन बडी ही ओजस्विनी भाषामे किया है। बच्चोके लिए–'वाराण्यूं बोल्यूं', 'कश्मीर जो सैरु' 'अनारदाना' तथा 'गुजरात'।

बाल-साहित्य :

दयाराम वसणमल मीरचन्दाणी (जन्म मार्च १८८०) : ये ३२ वर्षो तक सरकारी शिक्षा-विभागके अन्तर्गत अध्यापक रहे। आपने करॉचीके प्रसिद्ध नारायण

जगन्नाथ सरकारी हाइस्कूलके मुख्याध्यापक पदसे अवकाश ग्रहण किया। आप सिन्धी भाषाको देवनागरी लिपिमे लिखनेके समर्थक है।

रचनाएँ :—'सिन्धी ग्रामरु,' 'अगी हिसाब' तथा 'चूंड सिन्धी नसुरु'।

सोमराज निर्मलदास (जन्म-काल सन् १८८३ ई.) : ये हिन्दी और फारसीके अच्छे विद्वान है। इनके लेख 'सिन्धू', 'गुचै उमीद' तथा 'कालेज मखजन' मे खूब छपते थे। इनकी 'ख्याली झलका' नामक पद्यबद्ध पुस्तक प्रकाशित हुई थी।

मंघाराम उघाराम मलकाणी (जन्म १८९६) : भारत विभाजनसे वर्षो पहले ये भारतमे विभिन्न स्थानोमे प्रोफेसर रह चुके है। आजकल जय-हिन्द कालेज, बम्बईमे प्रोफेसर है। सिन्धके बाहर रहकर भी इन्होने सिन्धी साहित्यकी अच्छी सेवा की है। आप सिन्धीके प्रसिद्ध एकाकीकार है। आजकल आलोचनात्मक साहित्य प्रकाशित करानेमे विशेष रुचि रखते है। इन्होने श्री रवि बाबूकी 'गीताञ्जलि' का गद्यमे सुन्दर अनुवाद किया है।

इस कालके फुटकर लेखक :

१. वाधूमल मूलचन्द

रचनाएँ :—'सामी अ जा सलोक' पर टीका, कृष्ण गाथा।

२. नानकराम धर्मदास मीरचन्दानी

रचनाएँ :—मेघदूतका पद्य-बद्ध अनुवाद तथा छोटे-छोटे नाटक।

३ तीर्थ वसन्त

रचनाएँ :—रवि बाबूकी 'चित्रा' का सुन्दर भाषामे अनुवाद।

'चिणि गूँ' निबन्ध-ग्रन्थ (सिन्ध सरकार द्वारा पुरस्कृत।)

'जवाहिर जीवनी' प जवाहरलालजीकी आत्म-कथाका अनुवाद।

४. दीपचन्द तिलोकचन्द

५. लीलाराम ठारूमल माखीजाणी : इन्होने कई नाटक लिखे है।

६. देवदत्त कुन्दाराम शर्मा : आनन्द मठका अनुवाद, सरदार वल्लभ-भाई पटेलकी सक्षिप्त जीवनी तथा बाल-साहित्यपर कई लेख। 'वारिन हेस्टिग्स् जा कारनामा' तथा छह कहानियाँ।

७. पं. द्वारका प्रसाद यजुर्वेदी : छत्रसाल (तीन भाग), लोकमान्य तिलककी गीता तथा कई अन्य पुस्तके।

कहानी साहित्य :

श्री लालचन्दने 'हुर मखीअ जा' ऐ किशिनीअ जा कष्ट' लिखकर सिन्धी कहानीका आरम्भ किया। कॅप्टन स्टैकने देवनागरी लिपिमे अज्ञात लेखक द्वारा लिखी हुई 'आखाणी राइ दियाच जी' सबसे पहले प्रकाशित कराई थी।

श्री भेरूमल महरचन्दने 'प्रेम जो महातमु' तथा श्री निर्मलदास फतहचन्दने सरोजिनी नामक कहानी लिखी।

इस कालके प्रमुख कहानीकार यों है :

१ आसानन्द मामतोरा—'फैलसूफ'
२ झमटमल भावनाणी—'शीरी' ऐ 'पवित्र प्रेमु',
३. नानकराम धर्मदास—'धर्मराइ जी वही', 'जीवति जो जसु'

उसी समय हैदराबादसे श्री मेलाराम वास्वाणीने 'सुन्दर साहित्य' नामक मासिक पत्रिका निकालनी आरम्भ की। इसमे भारतके प्रसिद्ध कहानीकारोकी कहानियाँ अनूदित होने लगी, जिनमे मुख्य कहानीकार रवि बाबू, रणबीर, सुदर्शन तथा मुन्शी प्रेमचन्दजी थे, जो सिन्धी पाठकोके लिए विशेष लोकप्रिय बन गए। १९३० मे श्री बूलचन्द राजपालने 'सिन्धू' नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित करनी आरम्भ की। सही अर्थोमे यही एक पत्रिका थी, जिसका साहित्यिक मूल्याकन किया जा सकता है। अन्य लेखोके साथ इसमे कहानियाँ भी छपने लगी, जिनमे कई मौलिक थी। इनके मुख्य लेखक थे–सर्वश्री लुत्फ़ अल्ला बदवी, मिर्जा नादिर बेग, धर्मदास मीरचन्दानी तथा आसानन्द मामतोरा। इसके अलावा १—'रतन,' २—'कहाणी,' ३—'आशा,' ४—'भारत जीवन साहित्य मण्डल,' नामक पत्रिकाएँ भी खूब कहानियाँ प्रकाशित करने लगी।

साराश यह कि सन् १९२०से लेकर १९४५ तक सिन्धीमे सैकडो कहानियाँ अनूदित हुई। इस बीच कई मौलिक कहानियाँ पुस्तक रूपमे भी प्रकाशित हुई। यहाँ स्थानाभावसे लेखकोके नामोका ही उल्लेख किया जाता है :—

लेखक	रचना
१—श्री जेठमल परसराम	चमिडा पोश जूँ आखाण्यूँ
२—श्री प्रभुदास	अन्दर न ज उधिमा
३—श्री उसमान अली अनसारी	पज
४—श्री आसानन्द मामतोरा	जीवति–प्रेम ऐ पाप जूँ कहाण्यूँ
५—मिर्जा नादिर बेग	मिस रुस्तमजी ऐ मोहिनी
६—श्री गोविन्द पञ्जाबी	सर्दु आहू, रेगिस्तानी फूल
७—श्री बिहारी छाबिडया	सिधी कहाण्यूँ
८—श्री लेखू तुलिस्याणी	मन्जरी कोल्हिणि
९—श्री भवन पजवाणी	भेणु
१०—श्री कीरतु बाबाणी	हूअ
११—श्री लछिमण राजपाल	नओ जमानो
१२—श्री आनन्द गोलाणी	स्वमान
१३—श्री जीवतु नरियाणी	हथु न लाइ
१४—श्री अयाजु	रोलू खिलिणी
१५—श्री हरू सदारगाणी	भीमो थरी

निबन्ध :

इस कालमे जो निबन्धकार हुए, उनमेसे कइयोके नाम तो आ चुके है, लेकिन कुछ ऐसे लेखक रह गए है, जिनका विशेष रूपसे उल्लेख होना चाहिए। इनके नाम इस प्रकार है :—

१—प्रोफेसर लालसिह अजवाणी, २—श्री फतहचन्द वास्वाणी, ३—श्री लेखराज (अजीज), ४—श्री गोविन्दराम भाटया आदि।

बाल-साहित्य :

इस कालमे बाल-साहित्य भी पर्याप्त मात्रामे प्रकाशित हुआ। श्री मेलाराम वास्वाणीने 'गुल फुल' नामक मासिक पुस्तिका द्वारा, श्रीमती कमला हीरानन्द तथा 'बालकनि जी बारी' द्वारा निकलनेवाली मासिक-पत्रिकाने इस क्षेत्रमे कई छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ प्रकाशित की है।

राष्ट्रीय साहित्य :

इस कालमे विभिन्न लेखको द्वारा रचित पुस्तकोके अलावा हैदराबाद के कौमी साहित्य मण्डलने, जिसके सचालक श्री भेरूमल जगत्याणी थे, कई देशभक्तोकी जीवनियाँ छपवाई तथा उस समय तक लिखे हुए विभिन्न कवियो द्वारा रचित राष्ट्रीय गीतोको सकलित कर छपवाया। इसके अलावा श्री प्रभुदास ब्रह्मचारी तथा श्री दीपचन्दने भी कुछ पुस्तके 'नवजीवन साहित्य मण्डल द्वारा' प्रकाशित की।

धार्मिक साहित्य :

इस कालमे धार्मिक-साहित्यका भी प्रचुर मात्रामे प्रकाशन हुआ। अन्य धार्मिक पुस्तकोके अलावा स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी रामतीर्थकी कुछ पुस्तकोका भी अनुवाद हुआ। इस क्षेत्रके मुख्य लेखक है—दीवान चइनराइ आदवाणी, श्री टहलराम आसूदोमल वकील, श्री जेठमल परसराम, प तेजूराम शर्मा, प द्वारका-प्रसाद शर्मा, श्री फतहचन्द मेघराज आदि। इसके अलावा निम्नलिखित प्रकाशन-मण्डल इसके लिए प्रयत्नशील है —१ श्री चइनराइ ट्रस्ट, २ ब्रह्म विद्या माला, ३ सनातन धर्म सभा, ४ गुरु सगत, ५ ब्रह्मो समाज, ६. आर्य समाज, ७. थियॉ-सॉफीकल सोसायटी आदि-आदि।

द्वितीय उत्थान-कालके कवि :

मिर्जा कलीच बेगका वर्णन मैने 'शाह लतीफ' वाली पुस्तिकामे कर ही दिया है। श्री किशिनचन्द 'बेवसि' का वर्णन आपके सामने प्रस्तुत ही है। इस कालके शेष कवियोका सक्षेपमे वर्णन इस प्रकार है :—

लेखराज किशिनचन्द अजीज़. इनका जन्म हैदराबाद सिन्धमें हुआ था। फारसी तथा सिन्धीके बड़े विद्वान हैं। आजकल बम्बईमे प्रोफेसर है। इन्होने गीति-काव्य लिखा है। अपने गीतोमे प्रत्येक विषयपर कुछ-न-कुछ लिखा है। कविताके अलावा कुछ निबन्ध तथा नाटक भी लिखे है। इनकी भाषामे फारसी शब्दोका विशेष समावेश है। इनके काव्य-सकलनका नाम 'कुलियात अजीज़' है। गजल लिखनेमे विशेषता रखते है। श्री 'बेवसिजी' के बाद इन्हीकी उच्च कोटिके कवियोमे गणना होती है।

ख़ाकी. इनका पूरा नाम दीवान लीलाराम सिह वतनमल लालवाणी था। इन्होने सब-जजके पदसे अवकाश ग्रहण किया। इनका उपनाम 'खाकी' था। इनकी कविता हिन्दी छन्दोपर आधारित है। कविताके अलावा इन्होने कई नाटक और एकाध अेकाकी भी लिखा।

फ़ानी. दीवान सोमराज निर्मलदास "फानी" उच्च कोटिके विद्वान है। इनके पिता श्री निर्मलदासजी भी कवि थे तथा फारसी और अरबीके वडे विद्वान थे। यहाँ तक कि बडे-बडे मुसलमान आलिम भी कुरान शरीफ़ समझनेके लिए इनके पास पहुँचते थे। वेदान्तमे भी इनकी इतनी ही गति थी, जितनी कि सूफीवादमे। इनके काव्यमे वेदान्त और तसवफका सुन्दर समन्वय है।

दिलगीर : हरी गुरुदिनोमल 'दिलगीर' 'बेवसिजी'के शिष्योमेसे है। आप अभी नौजवान है। इनके काव्यमे भाव तथा भाषाका सुन्दर सामञ्जस्य है। कभी-कभी प्रगतिवादी गीत भी लिखते है। इन्होने बच्चोके लिए भी सुन्दर और मधुर गीत लिखे है। इनके दो सकलन—१ 'कोद' और २. 'माक फुडा' नामसे प्रकाशित हुए है।

दुखायल : श्री हून्दराज लीलाराम "दुखायल" का जन्म लाडकानामे हुआ था। आप श्री 'बेवसिजी'के पट्ट शिष्य है। सही अर्थोमे इन्हें राष्ट्रीय कवि कहा जा सकता है। भगवानने इन्हे कण्ठ भी मधुर दिया है। जिस समय आप अपने गीत सार्वजनिक सभाओमे अलापते है, उस समय जनताको मन्त्र-मुग्ध कर लेते है। इनके राष्ट्रीय गीत इतने प्रभावशाली है कि मरे हुए मे भी जान डाल देते है। आजकल ये श्री विनोबाजीके 'भूदान-यज्ञ' मे कार्य करते है और आपने हिन्दीमे भी गीत लिखने आरम्भ कर दिए है।

श्याम. श्री नारायण "श्याम" भारत विभाजनके बाद दिल्लीमे पोस्ट और टेलीग्राफ आफिसमे मुलाज़िम हैं। आप काव्य-जगत्के मुकुल है। आपकी रुबाइयाँ बड़ी सुन्दर और ओजस्विनी होती है।

हरू सदारंगाणी : ये फारसीके बड़े विद्वान है। सिन्धमे इन्होने पी. एच. डी किया था। विभाजनके बाद प्रोफेसरीके साथ-साथ रेडियोमे भी फारसी द्वारा प्रसारण करते है। सरकार द्वारा इन्हे फारसीमे विशेषज्ञता प्राप्त करनेके लिए ईरान भी भेजा गया था। आप बड़ी ओजस्वी भाषामे सिन्धी रुबाइयाँ लिखते है।

जिया : इनका पूरा नाम है श्री परसराम हीरानन्द 'जिया'। ये सिन्धी और फारसीके विद्वान थे। काव्य जगत्‌मे आपने अच्छा नाम कमाया है। भाषा और भाव भी सुन्दर है। इनकी धार्मिक बातोमे विशेष रुचि थी। अन्य कविताओके साथ-साथ आपने श्रीमद्‌भगवद्‌गीता तथा सुखमनी साहबका सिन्धीमे पद्यबद्ध अनुवाद किया है।

जोगी : इनका पूरा नाम है श्री लुत्फ़ अल्ला बदवी "जोगी"। ये सिन्धमे सिन्धी स्कूलमे हेडमास्टर है। इनकी रचनाएँ गद्य और पद्य दोनोमे है। आप एक अच्छे निबन्धकार भी है।

शेख़ अयाज़ · शेख़ अयाज़ उच्च शिक्षा प्राप्त विद्वान है और सिन्ध (पाकिस्तान) मे रहते है। इनका गद्य और पद्य दोनोपर समानाधिकार है। आप पद्यमे प्रवाहपूर्ण और ओजस्विनी भाषाका प्रयोग करते है। इनकी कविता पढ़नेसे हृदयमे उमग और उत्साह पैदा होता है।

भारती श्री गोवर्धन महबूबानी असल दादू जिला निवासी है। आप उदीयमान कवि तथा लेखक है। आजकल रेल्वे कर्मचारी है। कलासे इनको बड़ा प्रेम है। कविताके सिवाय नाटक भी लिखते है। बच्चोके लिए इन्होने 'लात्यूँ' नामक सुन्दर काव्य-ग्रन्थ लिखा है। यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत (५०० रु.) भी हो चुकी है।

तृतीय उत्थान-काल (भारत विभाजनके बाद) १९४७–१९४८ :

१५ अगस्त १९४७ मे भारत स्वतन्त्र हुआ और साथ-साथ उसका विभाजन भी हुआ। इस विभाजनका बुरा प्रभाव सबसे ज्यादा सिन्धी हिन्दुओपर ही हुआ। सबसे बड़ी हानि यह हुई कि सिन्धी बिखर गए। उनके सामने सबसे मुख्य और पहला प्रश्न था अपनेको बसानेका। उन्हे डर था कि कही उनकी भाषा लुप्त न हो जाए। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक पहलूसे तो सिन्धी विश्रखलित ही हो गए थे। इनमे सामञ्जस्य लानेके लिए उनके पास भाषाका ही बड़ा सहारा था और भाषाकी उन्नति केवल साहित्य सर्जनके द्वारा ही सध सकती थी; अत. साहित्यकार इस विषयमे उदासीन न होकर शीघ्र ही साहित्यके नव सृजनमे जुट गए। मातृभाषा द्वारा शिक्षा देनेके लिए पाठ्य पुस्तकोंकी कमी सबसे अधिक खटक रही थी। इस दिशामे अजमेरके कुछ मित्रोने मिलकर "सिन्ध पब्लिशिग सोसायटी" की स्थापना की और बम्बईके कुछ मित्रोने भी इस दिशामे प्रयत्न किया। फलस्वरूप कई पाठ्य पुस्तके छपकर विद्यार्थी जगतके सामने आई। साहित्य सृजनके लिए १९४९ मे बम्बईमे "सिन्धी साहित्य मण्डल"की स्थापना हुई। साथ ही कुछ साहित्यिक मासिक पत्रिकाएँ भी अस्तित्वमे आई, जिनमे आदि 'नई दुनिया', 'कहाणी', 'हिन्दवासी' (साप्ताहिक), 'फुलेली', 'नरगिस', 'सुहिणी', 'सेना' और 'रिम-झिम' मुख्य है।

इन पत्रिकाओमे अनूदित, कहानियो और धारावाहिक उपन्यासोके अलावा मौलिक कहानियाँ, उपन्यास तथा विविध विषयोपर निबन्ध प्रकाशित होने लगे। इधर अजमेर, दिल्ली, जयपुर, अहमदाबाद आदि कई स्थानोमे भी साहित्यिक प्रगति जोर पकडने लगी और अब तो यह कहते हुए गर्व होता है कि सिन्धीके साहित्यकार समयको देखकर सतर्क और जागरुक हो गए है। जितना साहित्य सिन्धमे निर्मित हो चुका था, उस सीमा तक पहुँचानेमे कोई कोर-कसर नही रखी गई है।

कहानी साहित्य :

भारतमे आनेके बाद सिन्धी भाषामे प्रचुर मात्रामे कहानियाँ लिखी गई है। अनूदित कहानियोके अलावा भी २००–३०० मौलिक कहानियाँ उपलब्ध है। यहाँ अनूदित कहानियोका वर्णन न करते हुए, मौलिक कहानीकारोकी तालिका मात्र ही दी जा रही है।

इस कालके मौलिक कहानीकार इस प्रकार है :—

सर्वश्री—आनन्द गोलाणी, सुगनु आहूजा, पोपटी हीरानन्दाणी, कीरतु बाबाणी, जगतु आदिवाणी, आसानन्द मामतोरा, अमरलाल हिंङ्गोराणी, लछिमणु राजपाल, गोविन्द माल्ही, तारा मीरचन्दाणी, सुन्दरी उत्तम चन्दाणी, मोती प्रकाश, कृष्णु राही, ईश्वरु आचलु, किशोरु पहूजा, उत्तमु, चेतनु माडीवाला, दासु तालिबु, गुलु आसिनाणी, मुरली, मुखी, नारायण भभाणी, आत्माराम लालवाणी, फतन्दु पुरसवाणी, नारायणु भारती, कला प्रकाश, मोहन कल्पना, किशिन खटवाणी, मनोहर-लाल, राम पजवाणी, लोकनाथ जेटले, हरीकान्त आदि सिन्धी साहित्यके मौलिक कहानीकारोके रूपमे प्रसिद्ध है।

आजकी सिन्धीकी कहानी अपना साहित्यिक रूप समीचीनता और सुन्दरतासे ग्रहण कर रही है। भावोके अनुरूप भाषा भी बनती जा रही है। आजका कहानी-कार भाव तथा कला पक्षमे सामञ्जस्य लानेमे सतर्क है। कई नए कहानीकार जो विभाजनके बाद हिन्दीकी गोदमे पले है और अपने पुराने कहानीकारोके चरण चिह्नोपर चलकर हिन्दी शब्दोके साथ फारसी शब्द भी ग्रहण करते है, उनकी भाषा कुछ कमजोर रह जाती है। उधर फारसी तथा अरबी शब्दोके प्रयोग करनेकी लहर-सी चल पड़ी है और पुराना साहित्यकार ऐसे ही कहानीकारोको दाद देता है, जिससे फारसीसे अनभिज्ञ नए लेखक सहम-सहमकर इस क्षेत्रमे पदार्पण करनेका साहस करते है। यह प्रसन्नताकी बात है कि आज इस क्षेत्रमे बहने भी उतर आई हैं इतना ही नही, कही-कहीं पति-पत्निने भी साहित्य-सृजनमें अपना योग दिया है। सिन्धीकी कहानी भी जीवनके निकटतर आ रही है। लेखक विविध विषयोपर लेखनी उठा रहे है। सामाजिक, राजनैतिक, अन्तर्राष्ट्रीय, स्वदेश-प्रेम, प्रगतिवाद आदि अनेक विषयोपर सुन्दर रचनाएँ हो रही है। सिन्धसे भारतमे आनेके बाद कैम्पो अथवा

अन्य स्थानोंपर सिन्धी लोग जिन कष्टोंसे गुजरे है अथवा अपनी सिन्धकी स्मृतिमें जिन लेखकोने कहानियाँ लिखी है, उनमे १—'गामिडो', २—'सिन्धुडीअ जा शल गोठ वसनि', ३—'सिन्धू' आदि कहानियोंके लेखक श्री आनन्द गोलाणी प्रधान है।

अन्य मुख्य कहानीकार और उनकी कहानियोकी सूची इस प्रकार है :—

कीरत बाबाणी—१. तूं पुछी थो त मा उदासु छो आह्यां ?, २. लुची, ३. श्रद्धा जा गुल, ४ बम्बई आमची, ५. दर्द जो दिलिमे समाइजी न सघ्यो, ६. हूअ, ७. जिलेबीअ जो चोरु, ७. नए जग जो कलाकारु, ८. महमद रामु आदि।

गोबिन्द माल्ही—१. अगिते कदमु, २. आशिक जो जनाजो आ, ३. पाप जो घड़ो, ४. नानाणी मजिलस, ५. दिल जी दुन्या आदि।

लोकनाथ जेटले—१. गामजी इजत, २. फुंदण मल, ३. अड़िबगु, ४. लाड़ी ड्राईवरु, ५. तीर्थयात्रा।

नारायण भारती—१. क्लेम, २. दस्तावेज़, ३. वरी शल न जगि अचे।

कुछ ऐसे भी दम्पति है जो इस क्षेत्रमे मिल-जुलकर आगे बढ रहे है, उनमेसे मुख्य इस प्रकार है :—

सुन्दरी उत्तमचन्दाणी और **उनके पति श्री उत्तम**—१. सिन्धूअ जो रूपु, २. ममता, ३. तूफान खा पोइ, ४. ममी मुँखे स्कूल ठहिराए दे, ५ कोशानु, ६. बन्धनु, ७. कश्मीरी साढी, ८ शाइरु, ९ हू अ, आदि।

श्री उत्तमु—१. जीवन साथी, २. वक्त जी बलिहारी, ३. वाक्आऊट।

कला प्रकाशु—१. देवठु, २. असी जिदह आह्यूं, ३. सरड जा गुल, ४. सिध्यत असाजे सीनेमे आहे, ५ नाइका आदि।

तारा मीरचन्दाणी—१. जोशु ऐ होशु, २. दीवार, ३. पर हून आयो, ४. सहकारु।

पोपटी हीरानन्दाणी—रगीन जमाने जूं ग़मगीन कहाण्यूं।

रामु पंजवाणी—शाह जूं कहाण्यूं।

चेतनु माड़ीवाला—सिन्धी जीवन कहाण्यूं।

नाटक :

भारतमे आकर सिन्धी साहित्यकारोंने नाटककी ओर कम ध्यान दिया है। न केवल मौलिक नाटक ही कम लिखे है बल्कि अनुवाद भी कम ही किए है। श्री यू. एम. मल्कानी, जो एकांकीकार है, उन्होने भी इस ओर कम ध्यान दिया है। यहाँ मौलिक नाटककारोके नाम तथा रचनाओंकी सूची प्रस्तुत की जाती है :—

राम पंजवाणी—'सिन्धु जां सत नाटिक' और 'पूरब जोती'।

दास तालिब—'सुभां जो समरु' और 'लिबर्टी ऐ मेट्रो'।

चेतन सुन्दराणी—'इन्साफु'।

कृष्ण राही—'नालो'।
किशोरु पहूजा—'दोहु कहिजो'।
खूबिचन्दू प्रभुदास—'जीवन ऐ कला'।
पोपटी हीरानन्दाणी—'खामोश फरियादु'।

उपन्यास :

विभाजनके बाद भारतमे आनेपर कहानीकी तरह उपन्यासोका भी अनुवाद आरम्भ हो गया। श्री जगत आदवाणीने अपनी "कहानी" मासिक पत्रिकाका नाम बदलकर "कहाणी नाविल माला" रखा और प्रतिवर्ष छह सुन्दर अनूदित उपन्यास प्रकाशित होने लगे।

उपन्यासोके लिए निम्नलिखित प्रकाशन गृहोने बडी लगनके साथ काम किया :—

बिहारी छाबिर्याने—"सरगम साहित्य माला"।

जेठानन्द लालवाणीने हैदराबादसे निकलनेवाली "भारत जीवन माला" का पुनर्मुद्रण शुरू किया।

इस दिशामे "हिन्दुस्तान किताब घर" वालोने सबसे बडा योग दिया।

इसके अलावा पूना, अजमेर, जयपुर तथा दिल्ली आदिमे भी कुछ प्रकाशन गृह स्थापित हुए है, जो इस दिशामे बड़ी सतर्कतासे काम कर रहे है।

यहाँ मै अनूदित पुस्तकोका वर्णन कर मौलिक ग्रन्थोके बारेमे ही लिखूँगा। अनूदित उपन्यासोके बारेमे इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि भारतके मुख्य-मुख्य उपन्यासकारो—रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरत्चन्द, मुन्शी प्रेमचन्द, शकर बनर्जी आदिके उपन्यास तथा रूस, इग्लैण्ड और फ्रान्सीसी उपन्यासकारोकी मुख्य-मुख्य रचनाएँ सिन्धी भाषामे अनूदित हो चुकी है। अब विभिन्न प्रान्तोमें जाकर बसनेवाले सिन्धी लेखकोने उन प्रान्तोकी विशेष रचनाओकी ओर भी ध्यान दिया है और धीरे-धीरे उन रचनाओका अनुवाद हो रहा है।

भारतमे आनेके बाद कुमारी तारा मीरचन्दाणीने 'कूमायल कली' नामक पहला मौलिक उपन्यास लिखा।

१९५२ से ही मौलिक उपन्यासोका दौर आरम्भ हो गया। श्री गोविन्द माल्ही जो पहले कहानीकार थे, वे अब उपन्यासकार बन गए और आज श्रेष्ठ उपन्यासकारोकी कोटिमे आपकी गणना होती है। श्री गोविन्द माल्हीके कुछ उपन्यास हिन्दीमे भी अनूदित हो चुके है। इस वर्ष ही इन्होने १—'आंसू', २—'जिदगीअ जे राह ते' और ३—'जीवन साथी' नामक तीन उपन्यास लिखे है।

इसी वर्ष श्री राम पजवाणीने 'जिदगी या मौतु' नामक उपन्यास लखा है।

१९५३ में श्री गोबिन्द माल्हीने 'मन जो मीतु' तथा पखी अड़ा वलरखा विछुड़िया' नामक दो उपन्यास लिखे।

सुन्दरी उत्तमचन्दाणीका 'किरदण्ड़ देवारू' नामक पहला उपन्यास निकला था।

इस उपन्यासके कारण श्रीमती सुन्दरी उत्तमचन्दाणीने उपन्यास-जगत्में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है और यह कहनेमे कोई अत्युक्ति न होगी कि सुन्दरी भाव भाषा और कला आदिके विचारसे इस क्षेत्रमे अनुपम है। यद्यपि श्री गोबिन्द माल्ही श्रेष्ठतम उपन्यासकार है, फिर भी सुन्दरीका स्थान विशिष्ट ही है। इसका प्रमाण यह है कि डेढ़ वर्षके अन्दर इस उपन्यासके दो संस्करण निकल चुके है। इस वर्षका अन्तिम उपन्यास श्री शिवो रामवाणी द्वारा लिखित 'गुमान' था, जिसे "भारत जीवन" वालोने प्रकाशित किया।

१९५४ : मे पूरे ९ मौलिक उपन्यास निकले। स्थानाभावसे यहाँ केवल उपन्यासकारोके नाम तथा रचनाओकी सूची ही प्रस्तुत की जाती है :—

लेखक	उपन्यास	प्रकाशन गृह
१. गोबिन्द माल्ही	'ललकार'	राणी प्रकाशन गृह
२. गोबिन्द माल्ही	'चचल निगाहू'	भारत जीवन गृह
३. मोती प्रकाश	'अन्धारो उजालो'	रिमझिम गृह
४. आनन्द गोलाणी	'मजू'	कहाणी गृह
५. दासु तालिब	'चीख'	सरगम गृह
६. मोहन कल्पना	'लगन'	भारत गृह
७. मोहन कल्याण	'आवारा'	भारत गृह
८. चन्दूलाल जयसिहाणी	'मुँहिजी शादी'	भारत गृह

इसके अलावा "मीरज साहित्य माला" तथा "प्रभात साहित्य माला" द्वारा प्रकाशित 'ब किनारा' और मोहन कल्पना द्वारा रचित 'राति बाकी आहे' और 'ज़िन्दगी' नामक दो मौलिक उपन्यास निकल चुके है।

प्रकाशन गृहोके अलावा कई साप्ताहिक और मौलिक पत्रिकाओमे बड़े ही सुन्दर निबन्ध छपते है, यदि उनका सकलन किया जाए, तो कई निबन्ध ग्रन्थ तैयार हो सकते है। ऐसी पत्रिकाओमे "हिन्दवासी" साप्ताहिक मुख्य है। इसकी १५००० प्रतियाँ छपती है। 'नई दुनिया' नामक एक और साप्ताहिक है।

लोक गीत :

लोक-गीतोके सग्रह करनेमे श्री नारायण भारती स्तुत्य प्रयत्न कर रहे है। उनके लोक-गीत अभी पत्र-पत्रिकाओमे ही छप रहे है, पुस्तक रूपमे अभी तक नही छप सके है।

फुटकर-साहित्य :

बम्बईसे निकलनेवाले "हिन्दुस्तान" दैनिक पत्रके ट्रस्टियों की ओरसे 'हिन्दुस्तान साहित्य माला' का पाँच-छह वर्षोंसे प्रकाशन हो रहा है। इस मालाके द्वारा विभिन्न विषयोपर सुन्दर पुस्तके छप रही है।

अजमेरकी 'सिन्ध पब्लिशिग सोसाइटी' तथा 'सुन्दर साहित्य' वालोने सरकार द्वारा प्राप्त सहायतासे एक नई योजना तैयार की है, जिसके द्वारा अरबी, सिन्धी तथा देवनागरी लिपिमे शीघ्र ही पुस्तके छपकर प्रकाशित होंगी। सबसे मुख्य प्रकाशन है 'हिन्दी-अँग्रेजी-सिन्धी कोष' (देवनागरी लिपिमे) इसके सम्पादक है सर्वश्री दीपचन्दजी, देवदत्तजी तथा प्रभुदासजी ब्रह्मचारी। यह कोश शीघ्र ही प्रकाशित होकर जनताके सामने आनेवाला है।

बाल-साहित्य :

भारतके विभिन्न स्थानोसे बाल-साहित्य प्रकाशित हो रहा है। श्री गोर्धन महबूबाणी "भारती" को 'लात्यूँ' नामक सुन्दर चित्रोसे सुसज्जित सगीत-ग्रन्थपर ५००) रुपएका सरकार द्वारा पुरस्कार मिल चुका है। श्री फतहचन्द वास्वाणीको भी 'भारत दर्शन' पर ५००) रुपऐका पुरस्कार सरकार द्वारा मिल चुका है। इसके अलावा श्री रोचो ख्वाबीने बच्चोके लिए बड़े ही सुन्दर गीत लिखे है। अजमेरकी 'बालकनिजी बारी' से 'फुलवाड़ी' नामक मासिक पत्रिका देवनागरी लिपिमे प्रकाशित होती है।

देवनागरी लिपिमें सिन्धी पुस्तकें :

अजमेरकी "सिन्ध पब्लिशिग सोसाइटी" द्वारा विभिन्न कक्षाओंके लिए विभिन्न विषयोंपर पाठ्य पुस्तके छप चुकी है। 'भारत दर्शन' का देवनागरीमे लिखित सस्करण छप रहा है। बम्बईकी "हिन्दुस्तान साहित्य माला" तथा खार स्थित "कमला हाईस्कूल" द्वारा कई पुस्तकें छप चुकी है। सबसे बड़ी प्रसन्नताकी बात यह है कि दिल्ली यूनीवर्सिटी की ओरसे आठ पुस्तकें देवनागरी लिपिमें छप रही है।

यह हमारे साहित्यकारोके लिए बड़े गर्वकी बात है कि उनके कुछ ग्रन्थोंका अनुवाद हिन्दी, गुजराती, मराठी, तथा अँग्रेजीमे भी हो चुका है। उनमें मुख्य ग्रन्थकार है :—सर्वश्री सुन्दरी उत्तमचन्दाणी, उत्तम, कीरतु बाबाणी, गोबिन्द माल्ही, गोबिन्द पजाबी, सुगुनु आहूजा तथा गोवर्धन "भारती"। इसके अलावा एक-दो लेखकोके ग्रन्थ पाकिस्तान वालोने उर्दूमे भी प्रकाशित कराये है।

भारत सरकारका सहयोग :

कई विद्वानोंकी पुस्तकें भारत सरकार नैशनल बुक ट्रस्ट तथा अकादमी द्वारा प्रकाशित तथा पुरस्कृत हो चुकी है। ५०००) रु. का सबसे बड़ा पुरस्कार श्री तीर्थ वसन्तको प्राप्त हुआ है तथा ५००) रु. का पुरस्कार श्री गोवर्धन महबूबाणी, श्री फतहचन्द वास्वाणी तथा श्री परसराम 'ज़िया' को मिल चुका है।

सिन्धी-साहित्य-सम्मेलन :

भारतमे आनेके बाद सिन्धी-साहित्य-सम्मेलनकी स्थापना हुई है। यद्यपि सम्वत् २००० मे हैदराबादमे विक्रम सम्मेलनके अवसरपर सिन्धी-साहित्य-सम्मेलन श्री नागराणीजीके सभापतित्वमे हुआ था, फिर भी भारत ही इसका उद्गम-स्थान माना जाएगा। इसके अधिवेशन बम्बई, दिल्ली, नागपुर, गाँधीधाम और भोपाल आदिमे क्रमशः सर्वश्री जयरामदास दौलतराम, प्रोफेसर नारायणदास मल्कानी, प्रो यू एम. मल्कानी, प्रो. लालसिह अजवाणी आदिकी अध्यक्षतामें हो चुके है।

पाकिस्तानमें साहित्य-सृजन :

विभाजनके बाद सिन्ध (पाकिस्तान) मे भी साहित्यकी सर्वतोमुखी उन्नति हुई है। सिन्धी-अरबी-सोसाइटीने बिना किसी भेद भावके हिन्दुओं द्वारा लिखित अप्राप्य पुस्तकोका जीर्णोद्धार किया है, अर्थात् उन्हे नए सिरेसे प्रकाशित कराया है। सिन्धी-अरबी-बोर्डके अलावा मुस्लिम-अरबी-सोसाइटी भी इस दिशामे काम कर रही है। अन्य मासिक पत्रिकाओके अलावा 'महराण' और 'नई जिन्दगी' नामक त्रैमासिक पत्रिकाएँ विशेष उल्लेखनीय है।

यह स्वीकार करनेमे कोई अत्युक्ति न होगी कि जितना साहित्य सिन्धमे आधी शताब्दीमे प्रकाशित नही हो सका, उतना साहित्य यहाँ १५ वर्षोंके अन्दर सिन्धी विद्वानोने प्रकाशित कराया है। प्रमाणस्वरूप १९५६ के नवम्बरमे दिल्लीमे साहित्य अकादमीने सरकार द्वारा स्वीकृत १४ भाषाओके साहित्यका प्रदर्शन किया था, उसमे एक स्टाल सिन्धी भाषाके पुस्तकोका भी था, जिसमे विभिन्न विषयोपर चुनी हुई ८५० पुस्तकें रखी हुई थी। यदि पूरी तौरसे छान-बीन की जाए, तो विदित होगा कि पाँच-छह हजारसे ज्यादा पुस्तकें सिन्धी भाषामे छप चुकी है।

इस प्रकारसे हम देखते है कि आज सिन्धी-साहित्य दिनोदिन विकासोन्मुख ही है। आज ऐसे अनेक लेखक सिन्धी भाषामे सामने आ रहे है, जिनसे हमें निकट भविष्यमे कुछ अभूतपूर्व साहित्यके उपलब्धिकी आशा है।

● ● ●

किशिनचन्द 'बेवसि'

[कवि-परिचय]

किशिनचन्द 'बेवसि'

• • •

सिन्धी काव्य-जगत्मे सूफी सन्तो तथा वेदान्ती साधुओकी काव्य-सुरसरिके प्रवाहित होनेके बाद वर्षों तक एक चुप्पी रही। बीच-बीचमे जो कवि हुए, वे पिटी-पिटाई बातोकी ही अभिव्यञ्जना करते रहे। १० वी शताब्दीके मध्यमे कुछ कवियोने जो कुछ लिखा, वह उर्दू कवियोकी नकल ही थी, जिसमे इश्क-मिजाजी अथवा बाह्य सौन्दर्यकी ही भरमार थी।

वग-भग-आन्दोलनके कारण राष्ट्रीय सन्देश भारतके पश्चिमी अञ्चलके कोनेमे पड़े हुए सिन्ध तक भी पहुँच चुका था, फलस्वरूप तोलाराम बालाणी तथा फतहचन्द बिजासिगके राष्ट्रीय गीतोकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी। फिर भी यह कहनेमे अत्युक्ति न होगी कि किशिनचन्द 'बेवसि' के काव्य-क्षेत्रमे पदार्पण करनेसे सिन्धी-काव्यमे नई चेतना आ गई। 'बेवसि' की भाषा इतनी शक्तिशालिनी तथा सौष्ठवपूर्ण है कि यदि इनका जन्म किसी स्वतन्त्र देशमे हुआ होता अथवा यों कहिए कि इनके निर्वाहके लिए सरकारी नौकरीसे अलग किसी स्वतन्त्र वृत्तिका सहारा होता, तो इनकी भाषा वह आग उगलती, जो सारे प्रान्तके नवयुवकोंमे एक नया ही जोश भर देती। ऐसे कविको जन्म देनका सौभाग्य सिन्धको प्राप्त हुआ।

किशिनचन्द 'बेवसि' के पूर्वज मुल्तानसे आकर सिन्धमे बसे, जहाँ लाड़काणा नगरमे २५ फरवरी, १८८५ ई मे किशिनचन्दजीका जन्म हुआ।

आप टीचर्स ट्रेनिग स्कूल (सिन्धी भाषामे) की पढाई समाप्त कर अध्यापकके रूपमे सरकारी नौकरीमे प्रविष्ट हुए और अन्त तक सिन्धके गाँवोमे अध्यापक रहकर आपने पेन्शन प्राप्त की।

सफल अध्यापक :

भगवानने शायद इन्हे अध्यापन कार्यके लिए ही जन्म दिया था। इनका विद्यार्थियोके साथ पितृ-तुल्य तथा आदर्श व्यवहार रहा। इन्होने भूलकर भी किसी विद्यार्थीको शारीरिक दण्ड नही दिया। वे आँखोके इशारो अथवा प्रेम-पूर्वक शिक्षा द्वारा बच्चोको समझाते थे। विद्यार्थी उन्हे 'साँई' शब्द द्वारा सम्बोधित करते तो वे भी उन्हे 'साँई' ही कहते। बच्चेसे लेकर बूढे तक सभीको आप 'साँई' के नामसे ही सम्बोधित करते।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि 'साँई' शब्द सस्कृतके 'स्वामी' शब्दका अपभ्र श है और प्रत्येक सिन्धी व्यक्ति सम्मान देनेके विचारसे एक दूसरेके लिए 'साँई' शब्दका प्रयोग करता है।

श्री 'बेवसि' प्रेमकी मूर्ति, चरित्रवान् तथा बडे ही मिष्ठ-भाषी थे, अत: जिस गाँवमे वे भी अध्यापक होकर जाते, वहाँके लोग उनपर मुग्ध रहते और कभी वहाँसे उनके स्थानान्तरका मौका आता तो सारे गाँवके लोग रो उठते और खज-महाजन, जिनमे हिन्दू-मुसलमान सब होते, इनका स्थानान्तर रुकवानेके लिए अफसरोके पास जाते।

कविताका वरदान :

माँ सरस्वतीका इन्हे जन्म-जात वरदान प्राप्त था। १६ वर्षकी आयुमे ही इन्होने कविता लिखना आरम्भ किया। उन दिनोमे आप हैदराबाद (सिन्ध) ट्रेनिग स्कूलमे शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, कि एक रातको 'वर्षा' पर रचना करते-करते कुर्सीपर ही इन्हें नीद आ गई। ट्रेनिग स्कूलके सुपरिन्टेण्डेण्ट चक्कर लगाते हुए जब इनके कमरेमे दाखिल हुए, तो विद्यार्थीको कुर्सीपर सोया हुआ देखा। सामने मेजपर एक सुन्दर रचना रखी हुई थी। सुपरिण्टेण्डेण्ट उक्त पुस्तकको चुपचाप पढकर चले गए। दूसरे दिन उन्होने श्री 'बेवसि'को अपने कमरेमे बुलाकर उनकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा—"बवसि', एक दिन तुम निश्चय ही महाकवि बनोगे।" उनकी यह भविष्यवाणी सच निकली और वह दिन आया जब कि 'बेवसि' सिन्धी कवियोके सिरमौर बने।

सन् १९१९ मे जब मै सिन्ध नैशनल कालेजका विद्यार्थी था तब इनकी पहली कविता भी हमने सुनी जिसे कालेजके विद्यार्थी बड़े प्रेमसे गाया करते थे; वह थी 'देश-प्रेम', जिसकी कुछ पक्तियाँ इस प्रकार है —

'अकुलु, आज़ादिगी, इक़िबालु ऐं आसूदिगी इज़त,
उतेई पेरु पाईंदा सचाँ जिति मुल्क लइ मुहिबत,
उहे माइरु भलो मुरिकनि, जे बारोतनिमें लोली वियनि
त सदिके देश तां तन मन करण जहिड़ो न बी खिज़मत

जिगिर पंहिजा कढी डोघूं, मिठो ओलावु मोखींदियूं
इहाई बास बासींदूं त रहिजे मुल्क जी अज़मत।

[ज्ञान, स्वतन्त्रता, प्रताप, वैभव और सम्मान प्राप्त करनेके लिए देशके नवयुवक वही पाँव रखेग जहाँ देशके लिए सच्चा प्रेम होगा। वे माताएँ क्यो न हँसे जो अपने नवजात शिशुओको यही लोरी सुनाती है कि अपने देशके ऊपर तन-मन न्यौछावर करनेसे बढकर और कोई सेवा नही। एसे पुण्य कार्यके लिए माताएँ अपनी प्यारी सन्तानको सहर्ष सौप देगी और इस प्रकार उनका जीवन सार्थक बनाएँगी और यही मिन्नते मानेगी कि हमारे देशकी महानता अक्षुण्ण रहे !]

दिल्लीमे सन् १९११ मे जब पञ्चम जॉर्जका राज-दरबार हुआ था, तब भारतके अनेक कवियोने उनके स्वागतमे गीत लिख-लिखकर भेजे थे। 'बेवसि' ने भी एक गीत लिखा था, जो वहाँ न भेजकर लाडकाणाकी स्थानीय पत्रिकामे भेज दिया। उसकी प्रति जब सरकार द्वारा लन्दन भेजी गई, तो कहते है कि लन्दनकी जनताको उक्त कविता बडी अच्छी लगी और वायसरायको तार भेजा गया कि वह कविता स्वर्णाक्षरोमे आर्ट पेपरपर छपवाकर म्यूजियममे रखनेके लिए भेजी जाए।

यह उदाहरण केवल इसलिए दिया गया है कि 'बेवसि सॉई' की रचनाएँ बड़ी लोक-प्रिय हुआ करती थी, जब वे काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। एक बार मैंने "सस्कृत परिषद्" के मन्त्रीकी हैसियतसे उनसे 'कालिदास' पर कविता भेजनेकी प्रार्थना की थी, तो उन्होने एक सुन्दर रचना भेज दी। इससे प्रमाणित होता है, कि वे इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकनेपर भी निराभिमानी ही रहे। दादू (सिन्ध) मे जब हमने "द्वितीय सिन्ध-राष्ट्रभाषा-सम्मेलन" किया था तो वे हमारे निमन्त्रण पर अपना अमूल्य समय देकर पधारे थे।

'बेवसि सॉई' पर आरम्भिक रचनाओमे सिन्धके सूफी सन्तो शाह अब्दुल लतीफ, सामी, सचल, बेदिल और बेकसका प्रभाव था। बादमे जब १९१९ मे राष्ट्रीय आन्दोलनकी लहर उठी तो उनपर गाँधीवाद और साथ-साथ रवि बाबूकी विचार धाराओकी भी छाप पड़ी।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि 'बेवसि' ने घरमे बैठकर ही अँग्रेजीका इतना अध्ययन कर लिया था कि वे रवि बाबू तथा शेक्सपियरकी रचनाओको अच्छी तरह समझ लेते थे। रवि बाबूकी 'साधना' और 'गीताञ्जलि' का आदर वे गीताकी तरह ही करते थे।

जीवनके पिछले दस वर्षोंमे प्रति रविवारको 'गीता', 'गीताञ्जलि' और 'साधना' पर ज्ञान-बागमे उनका प्रवचन हुआ करता था। कभी-कभी कालेजके विद्यार्थी भी शेक्सपियर तथा 'गीताञ्जलि'का अर्थ समझनेके लिए इनके पास आते थे।

बच्चोंसे प्रेम :

'बेवसि साँई' ने यद्यपि अपने अन्तिम दस वर्षोमे लिखना बन्द कर दिया था, फिर भी वे बच्चोंको न भुला सके। इन अन्तिम वर्षोमे इन्होने बच्चोके लिए बडे ही शिक्षा-प्रद गीत लिखे है। भला जिसकी सारी आयु बच्चोके साथ व्यतीत हुई हो, वह बच्चोको कैसे भुला सकता था!

इनकी ये रचनाएँ 'शीरी शेर' मे छपी है जिसे सरकारने उसे पाठ्य पुस्तकके रूपमे स्वीकृत किया था। 'बिरादरी' नामक कवितामे वे बच्चो द्वारा कहलवाते है —

असीं बालक आहयू तुंहिंजा, पिता परमात्मा आला,
निराल्यं जे थियूं बोल्यूं, निराला थ्या खणी चाला,
रंगनि बोल्युनि ऐं कौमियत खां असां में फर्कु थ्यो छाला ?
हकीक़तमें असीं भाउर, पिता हिकुई धणी ताला!

[हे परमात्मा! हम तुम्हारे ही बालक है। भले ही निराली भाषाएँ हो, निराली रहन-सहन और चाल-ढाल हो, लेकिन इन वर्णो, भाषाओ और जातियोके कारण हममे भेद किसलिए? वास्तवमे हम सब भाई-भाई है, और एक ही प्रभु हमारा पिता है!]

वे आगे लिखते है :—

ज़ाति वरन रंग रूप जो साईंअ वटि ना फेरु,
हू हुब हरकंहिं सां रखे, रखे न कंहिं सां वेरु।

[प्रभुके पास जाति, वर्ण, रग तथा रूपका कोई भेद नही है। वे सबके साथ प्रेम ही रखते है, उनके पास वैर या द्वेषका नाम तक नही है।]

सर्वस्व समर्पणका स्वप्न इन्होने बहुत पहले देखा था। सन् १९२५–२६ में लिखी हुई 'नेकी' नामक कवितामे आपने लिखा है :—

विल्हनि में वंडि, जे अथई मालु धनु,
न धनु आहि काफी त भेटा दे मनु,
न मनु आहि मुवाफिक त अरिपे दे तनु
न तनु जे तवानो त्फे त मिठिड़ो वचनु
मगरि की न की तोखे दियणो जरूरु
फिदा पर-भले लाइ थियणो जरूरु।

[यदि तुम्हारे पास धन है, तो गरीबोको बाँट दो, यदि धन पर्याप्त नही है तो मनकी भेट दो, यदि मन ठीक नही है तो तन अर्पित करो और यदि तन भी स्वस्थ नही है तो मीठे वचन बोलो। लेकिन तुम्हे कुछ-न-कुछ देना जरूर है और परोपकारके लिए अवश्य ही अपनेको न्यौछावर करना है।]

स्वर्गवास :

स्वर्गवास होनेसे १० वर्ष पहले 'बेवसि साँई' ने एक प्रकारसे वानप्रस्थ ही ले लिया था। वे बाहर बहुत ही कम निकलते और घरपर रहकर ही अपना पैतृक व्यवसाय अर्थात् होम्योपॅथी इलाज करते थे। यद्यपि इनके पिता होम्योपॅथ न होकर यूनानी हकीम थे। फिर भी ऐसा कहनेमे अत्युक्ति नही होगी कि इलाज करना उनका पैतृक व्यवसाय था।

इन दस वर्षोमे इन्होने अपने इष्टदेव भगवान श्रीकृष्णमे खूब मन रमाया और दर्शन-शास्त्रका गहरा अध्ययन किया था।

उन दिनो प्रति रविवारको धाड़ नहरके किनारे बसे हुए ज्ञान-बागमे 'श्रीमद् भगवद्गीता' अथवा गुरुदेवकी 'साधना' और 'गीताञ्जलि' पर प्रवचन हुआ करते थे।

'बेवसि साँई'ने यद्यपि खुले आम राजनैतिक आन्दोलनमे भाग नही लिया, फिर भी उनके हृदयमे स्वराज्य-प्राप्तिकी तड़प गहरी पैठी हुई थी।

स्वर्गवाससे पहले आप पाँच महीनेकी लम्बी अवधि तक बीमार रहे। सन्तोषका विषय यही रहा कि आपने अपनी मृत्युसे पहले भारतको स्वतन्त्र देख लिया। २३ दिसम्बर सन् १९४७ की शामको आप स्वर्गवासी हुए।

रचनाएँ :—१. शइरु बेवसि, २. शीरी शइरु, ३. मौजी गीत (बच्चोके लिए), ४. गुरु नानक जीवन कविता।

कविने अपने विषयमे स्वय इस प्रकार लिखा है :—

गंज ख़ाना गुप्तु ग़ैबो ख़ासि खोलण वासिते
आहि क़ुदिरत खां मिल्यल कामिल कवीसर खे कलीद।

[गुप्त और अज्ञात निधियोको विशेष प्रकारसे खोलनेके लिए प्रकृति महाकविके हाथमे कुञ्जी सर्मपित करती है।]

इसी कथनके अनुसार 'बेवसि' साहबने अपने अन्तिम दिन भारतीय और सूफी दर्शन-शास्त्रकी कई गुत्थियाँ सुलझानेमे व्यतीत किए, फलस्वरूप 'सामूँड़ी सिपूँ' और 'गगा जूँ लहियूँ' नामक कविताएँ प्रकाशमे आई। इनका वर्णन आगे किया जाएगा।

सिन्धके प्रसिद्ध विद्वान प्रोफेसर लालसिह अजवाणी लिखते है—'अलिफ लैला' और 'चन्द्रकान्ता'के रोगसे निकले हुए मुमताजो और दम साजो, बोकलमन और अमीर हमजो, ताजअल मलूको, चहार दरवेशो, बकावलियो और अंजुमन आराओ, सब्ज परियो और मलकोने एक तरफ दिमाग खराब किया था तो दूसरी तरफ ऐयारो और तिलसमों, तहखानों और गुप्त कमेटियो तथा बिजलीके नेजोने दिलको डॉवाडोल कर दिया था, उस समय बकिम तथा बाबू शिव ब्रतलालकी रचनाओने मेरे लिए सञ्जीवनीका काम किया।

उसी प्रकार जब शमा और परवाना, गुल और बुलबुल, हुस्न यूसिफ और चश्म आहो, आब और ताब, नाज और नियाग बहार और शराब आदि थोथी उपमा और अलकारोने, बैत बाजी, अनुप्रासो तथा बे माना रदीफो (छन्दो) ने मनको दुखी कर दिया था, तब लाड़काणा निवासी एक गरीब अध्यापक श्री किशिन-चन्द तीर्थदास खत्री ने; 'बेवसि' नामसे मधुर गीतो, सुन्दर भजनो और बुद्धिमत्ता पूर्ण सनको (सामूंड़ी सिपूं) द्वारा दूषित वायु मण्डलको शुद्ध किया और निराशामेसे आशाकी झलक प्रकट की।"

शाह साहबका प्रभाव :

मैंने श्री 'बेवसि साई' की जीवनीमे दिखाया है कि आरम्भमे उनपर 'शाह अब्दुल लतीफ', 'सचल' तथा 'सामी' आदि कवियोका प्रभाव था, वे स्वय इस बातको इस प्रकार प्रकट करते है.—

आहि हरकींहं बैत अंदरि पल्टि पल्टां प्रिति जी,
हर लतीफी-लातिमें सा लंव संदी ललिकार आहि,
बागे-शाहीअ मां मिली व्यो बर्कु गुल जो को जरो,
छा चवां 'बेवसि' मंझिसि जा हैरती हुबिकार आहि।

[शाह अब्दुल लतीफके काव्यके बारेमे लिखते है कि—प्रत्येक दोहेमे प्रेमकी पलट है और प्रत्येक लतीफी लाति (कलरव) मे प्रेमकी ही ललकार (मधुर गुञ्जार) उठती है। उस विशाल उद्यानमे से मुझे भी फूलकी पखुरी मिल गई।]

उस फूलकी पखुरीका सौरभ उनकी 'जोति', 'सतारु कुदिरत', 'हुस्न', 'सूंहं जी सखा' आदि कई कविताओमे मुखरित है।

'हुस्न' नामक गीतमे वे लिखते है:—

सारो संसारु थो पविभिणि जे अग्या दाणु दिये,
बागु गुल, हार दिये, अतुर जी सुरहाणि दिये,
झोल मोत्युनि जा भर्यो मौज सां महिराणु दिये,

लाल, याकूत, रतन, सोनु, रुपो खाणि दिये,
दानी हर जिन्स बणी सूंहं जे सरदार अगघां
ताबइ हर दिलि जूं हदूं हुस्न जे सरिकरि अगघां।

[सारा ससार सौन्दर्य रूपी पद्मिनीको दान दे रहा है, बाग, फूल, मालाएँ तथा इत्रकी सुगन्ध अर्पित करता है, समुद्र बडे आनन्दपूर्वक मोतियोकी झोलियाँ भर-भरकर देता है और खाने देती है लाल, याकूत, सोना, चाँदी आदि। प्रत्येक वस्तु इस सौन्दर्यके सरदारके सामने अञ्जुलि भरकर आती है, और इस हुस्नकी सरकारके आगे प्रत्येक हृदयकी सीमाएँ वशीभूत है!]

कवि निम्नलिखित पक्तियो द्वारा सत्यम् (प्रभु)का आभास प्राप्त करता है :–

जा मिजाज़ीअ खे सुझे मुहिब संदी मूरत में,
सूंहं 'बेवसि' सा हक़ीक़ीअ लइ सजी कुदिरत में,
का बि बी सूंहं सुझे चीज़ न थी फ़ितिरत में,
जाबजा हुस्नु हक़ीकत जे सफा सूरत में,
थी सघे गरि को हवासिनि जे हुकूमत खां परे,
हूंद हरि चीजमे दिल्दार जो दीदारु करे।

[जो आनन्द मिजाज़ी (बाह्य प्रेमी) को अपने प्रेमी (व्यक्तिगत) मे आता है, वही आनन्द हकीकी (प्रभु-प्रेमी) सम्पूर्ण प्रकृतिमे अनुभव करता है, उसे इस सृष्टिमे प्रभुकी सुन्दरताके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुका आभास नही होता। यदि कोई इन इन्द्रियोके शासनसे मुक्त हो सके तो सत्य ही वह प्रत्येक वस्तुमे प्रियतमका दर्शन पा जाए।]

मानव जब तक इन्द्रियोके वशीभूत है, तब तक इन्द्रियातीत आनन्दके सुखका अनुभव नही कर सकता। मानव मायाके वशीभूत होकर सच्चिदानन्दका वह सत्य, सत्वस्वरूप जो सर्वत्र तथा अनेक वस्तुओके रूपोमे एक ही परब्रह्मका रूप है, अनुभव नही कर पाता। लेकिन प्रभु लीलामय है। उसे तो नए-नए रग रचाकर ही विविध और विचित्र लीलाओ द्वारा अपने प्रेमी (भक्त) को रिझाना भाता है। 'बेवसि' साँई अपने 'जोति' नामक गीतमे लिखते है ––

अपारी आदि खांथी, थो बखीं बे अन्ति रचिना मां,
थीं बेरंगी, रचाईं रंगपुरि में रंग न्यारा थो।

[अनादि और अनन्त होनेपर भी तुम अपनी रचना (सृष्टि) द्वारा व्यक्त होते हो। बेरगी (रग-रूप रहित) होकर भी, रगपुर (व्यक्त सृष्टि) मे नए-नए रग रचाते हो।]

सिफ़ाती वेस में साईं! पसीं थो हुस्न ज़ातीअ खे,
रचे वहिदत मंझां कसिरत, करीं केदा पसारा थो।

[ऐ स्वामी! सिफ़ाती (रूप और वर्ण) वेशमें आप जाती हुस्न (अव्यक्त सौन्दर्य) का आनन्द लेते हो और एकत्वसे अनेकत्व की सृष्टिका कितना प्रसार करते हो!]

अरूपा! रूप मन्दर में जलाए प्रेम जी अगिनी,
दियण लइ आप आहूती, रचीं दिलि जा दुआरा थो।

[हे प्रभु, आप निराकार होकर भी, रूप मन्दिरमे प्रेमकी अग्नि जलाकर, अपनी आहुति डालनेके लिए हृदयके द्वारोका निर्माण करते हो।]

भगवानको भी इस लीलाका आनन्द तभी प्राप्त होता है, जब वह अपनी आहुति देता है।

इस लीलामयी सृष्टि द्वारा ही भगवान मनुष्यको अपना भेद अथवा रहस्य बतलाता है। यद्यपि उर्दूके किसी शायरने कहा भी है:—

'दे दिया सब कुछ मगर न अपना सुराग दिया।'

[भगवानने सब कुछ देकर भी अपना भेद नही दिया।]

लेकिन 'बेवसि' 'इन्सान' नामक गीतमे बतलाते है.—

रूह तुंहिंजे खे करे नूर मां किअं हा पैदा,
जे हुजे खेसि न हा भेद बताइण जो खियालु।

[ऐ मनुष्य! उसे यदि अपने भेद बतानेका विचार न होता, तो वह तुम्हे अपनी रूह (आत्मा) से क्यो कर उत्पन्न करता? लेकिन वह भेद प्रेमके सिवाय प्राप्त हो नही सकता।]

तो में यज़दां जर्हिं प्रेम भरी दिलि थे भरी,
हो तर्हिं धार करे खेसि मिलाइण जो खियालु।

[तुमको भगवानने जब प्रेमपूर्ण हृदयसे भरा, तब तुम्हे अपनेसे विमुक्त कर (तड़पाकर) अपनेमे लीन करनेका विचार था, क्योकि ...]—

इश्क़ धारां न हले दिलि ते हुकूमत कंहिंजी,
हो न ताक़त सां को क़ुदिरत खे दबाइण जो खियालु

[प्रेमके सिवा किसी अन्यका हृदयपर शासन हो नही सकता, उसे अपनी शक्ति द्वारा तुम्हे दबानेका विचार नही था।]

यदि भगवान तुमसे प्रेमकी अभिलाषा रखता है तो वह भी तुमपर ही अपना प्रेम केन्द्रित करता है :—

तुंहिंजे रचिना ते रस्यो, हुस्न खे छा ऐनु कमालु,
जोड तुंहिंजे ते उथ्यो प्रिति पचाइण जो खियालु।

[तुम्हारे निर्माणपर ही, सौन्दर्य पराकाष्ठा पर पहुँचा; तुम्हारी सृष्टि द्वारा ही प्रभु अपने प्रेमको परिपक्वावस्थामे पहुँचानेका विचार करते थे।]

प्रकृति-वर्णन :

यद्यपि 'बेवसि' साँईने प्रकृतिका खुलकर वर्णन नही किया है, फिर भी जहाँ-तहाँ उसके छोटे हृदयको प्रफुल्लित कर देते है। 'बेवसि' साँईने प्रत्येक विषयपर अपनी रचनाएँ की है, शायद ही कोई ऐसा विषय हो जो उनसे छूट पाया हो; फिर भी इतना कहना पडेगा, कि प्रत्येक विषय पर रचना करते हुए भी उनका बाहुल्य अथवा प्राचुर्य नही है। केवल उनकी मार्मिकता स्पर्श तक ही अपनी लेखनीको सीमित रखा है। अस्तु। उद्यानका वर्णन करते हुए वे लिखते है :—

फुलवारि फूह माँ फरी, फूलनि जी धूम धाम,
छा लाम लाम ते टिड़या, गुल लालु आमु जामु,
गेडो, गुलाबु दीद खे, दिये अशिरफ्यूं इनामु,
शबनम् वसाए शौक़ मां, मोत्युनि मुठ्यूं मुदामु।

('बाग़ बहार')

[उद्यान पूर्ण यौवनमे फूल उठा, फूलोकी बाहर छा गई, प्रत्येक शाखापर लाल फूल खिल उठे, गेदा और गुलाब दृष्टिको उपहार स्वरूप अशर्फियाँ प्रदान कर रहे है और हिमकण शौकसे मोतियोंको मुट्ठीमे भर-भरकर लुटा रहे है।]

लगी लाला खे लालई, चमक गेंडे गुलनि लाई,
वस्यो गुलज़ारि में जाई, ककरु को सोन लुसिर्युनि जो।
गुलाबी रंग जा प्याला, विना नर्गिस खे थे लाला,
कक्रोर्या नेण मतवाला, अजबु इज़हारु अखड्युनि जो।

[लालामे लाली भर गई है, गेदेमे चमक आ गई है। ऐसा मालूम होता है कि बगीचेमे स्वर्णकी बारिश हो उठी है।]

नया मोड़ :

श्री 'बेवसि' और सूफी कवियोके बाद मध्यवर्ती काल अरबी और फारसीकी गज़लो और मसनवियोंके प्रभावके कारण शायरोमे गेसूअे दिलरुबा और आबे कौसरकी तलाश थी। उन्हें सिन्धकी सभ्यता तथा अभिलाषाओंकी तनिक भी पर्वाह न थी। मगर श्री 'बेवसि' ने भाव जगत्मे नया मोड़ उपस्थित किया।

उनके काव्यका अध्ययन करनेसे पता चलता है कि वे फारसी भाषा तथा छन्द-शास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे। यद्यपि फाइलातनि फाइलातके बन्धनमें जकड़े रहे, फिर भी उन नियमोके न तो कैदी ही बने और न भिखारी ही। जब-जब भावावेशमे आते, तो 'वज़न', 'बहर', 'काफ़िया' और 'रदीफ' आदि धरे ही रह जाते और वे भादो की नदीकी तरह तटोको तोड़कर अग्रसर होते।

श्री 'बेवसि' कही-कही 'गुल' और 'बुलबुल'को भी नही भूले, मगर उन्हें भी उन्होने नए ढगसे ही प्रस्तुत किया :—

छा कंदी तदिबीर उति, जिति सख्तु दिलि सय्यादु आहि,
बुलबुल्युनि सां बागमें अज॒ अण पुछो बे दादु आहि।

[जहाँ आखेटक बडा कठोर हृदय है, वहाँ युक्ति किस कामकी। आज उद्यानमे निश्चय ही बुलबुलोके साथ अत्याचार है,मगर उसी सनकमे ही लिखते है .]:—

ख॒शि लक़ा दुनिया जे मुंहं तां, लाहि दुख दर्सी नक़ाबु,
सुख दर्स लइ हूर दुनिया, दिलिरुबा दिलि शादि आहि,
छा संवसि तश्बीह बेवसि माह ता बां सां कजे,
रूइ ख॒बां आशिक़नि लइ ख॒दि खुदा आबादु आहि।

[प्रसन्नतापूर्ण ससारके मुखसे अवसादपूर्ण आवरणको हटा दो, क्योकि जो इसका सुखरूपमे दर्शन करते है, उनके लिए अप्सरा दुनिया, प्रियतमा और प्रसन्न हृदया है।]

सचमुच ही 'बेवसि' ने निराशावादियो और ससारको दु खपूर्ण माननेवालोंके लिए आशा और आनन्दका सन्देश दिया है। न मालूम क्या समझकर उन्होंने अपने लिए 'बेवस' का उपनाम चुना ! वास्तवमे वे तो सबल आशावादी हैं। 'इन्सान' नामक गीतमे आप लिखते है .—

का बि आदो न अटक आहि जे 'बेवसि' न बणीं,
आहि दुनियामे अगरि धूम, मचाइण जो ख़ियालु।

[यदि ससारमे धूम मचानेका तुम्हारा विचार है तो तुम्हारे सामने कोई बाधा टिक नही सकती। हाँ, यदि अपनेको बेवस (विवश) न मानो।]

जीवनके बारेमे जो हमारी दुष्ट भावनाएँ है, उनका परित्याग करनेका परामर्श देते हुए 'जिन्दगी' कवितामे वे गुनगुनाते है —

बे किनारे बहिरु आहे तुहिंजी ज़ाती जिंदगी,
जा सुझे फोटो, फ़ना थी सा सिफ़ाती ज़िंदगी।

[तुम्हारा असल जीवन बिना किनारोका सागर है, जिसका तू बुलबुला और नाशवान मानकर बैठा है, वह सचमुच सत्य स्वरूप और अमर है !]

भूंइमें दबिजी बि किअं हो चश्म बिजु सालिमु सुजाणु,
तो रुगो निसिर्यल सले अन्दरि सुञाती जिंदगी।।

[पृथ्वीके भीतर दबकर भी बीज सुदृढ और सतर्क था, लेकिन तुमने केवल निःसृत पौधेमे ही जीवन पहचाना।]

बन्द जिस्मानी भुलाए अर्श ऊचे ते उड़े,
थी रखे आज़ादु थी छा छा न छाती जिन्दगी।

[जिस समय शारीरिक काराको काटकर यह जीवन आकाशमे उडता है, तो स्वतन्त्र होनेपर क्या-क्या नही कर पाता!]

'बेवसि' जीवनको शाश्वत मानते है और साथ-साथ पुनर्जन्मके प्रति भी अस्थावान है:—

हरि हयाती मर्कजी गुलु हार हस्तीअ में बणी
नाहि हीअ हिकिडी फक़ति, हाजरु, हयाती जिंदगी।

[अस्तित्वकी मालामे प्रत्येक जीवन-पुष्प केन्द्रीय स्थान ग्रहण करता है, यह प्रस्तुत जीवन ही केवल एक जीवन नही है।]

मृत्युको भी वे जीवनका एक परिवर्तित रूप ही मानते है:—

जे हुजे हा नेस्तीअ ऐ नाहि में अंजामु मौतु
हूंद दुनियामें न थ्ये हा हिन तरहि सां आमु मौतु,
जिन्दगीअ जे शाम लइ थ्यो राति जो आरामु मौतु,
थो अमरता जो सुणाए सुबुह सां पैगामु मौतु
किअं क़दीमी रोज़ु रोशनु नितु नवाईअ खां नओं
राति जे पर्दे खे चीरींदो अचे सूरिजु संओं।

('मौतु')

[यदि मृत्युका अन्तिम रूप नश्वरता और नास्तिमे ही होता, तो ससारमें मृत्यु इस प्रकार साधारण न होती। जीवन-सन्ध्याके लिए रात्रिमे ही मृत्यु रूपी विश्राम है और प्रभात ही अमरत्वका सन्देश देता है। सदा सर्वदा प्रभापूर्ण यह प्राचीनतम और नित्य नूतनसे भी नूतन सूर्य किस प्रकार रात्रिके परदेको चीरता हुआ बाहर निकलता है।]

साँई 'बेवसि' मृत्युमे भी प्रसन्नताका ही अनुभव करते है:—

मौत जो सुहिणो मलाइकु आहि रहिमत जे समानि,
बदि नुमाईअ ऐं कुराड़प ते कशे करिड़ी कमान,

पुष्प पेशानीअ ते आणे नव निजाकत जो निशानु
उमिरि जे चहिरे तां, 'बेवसि' घुंज थो मेटे छदे,
नेकु बदि अइमाल खे वेसरि सां थो रेटे छदे।

[प्रसाद पूर्ण है यह मृत्यु रूपी सुन्दर देवदूत, जो कुरूपता और बुढापेपर कठोर धनुष ताने हुए है, जो वर्ष भारसे झुकी हुई प्राचीनता और दुर्बलताको निश्चय ही भुला देता है, जो आयुके चेहरेसे पोपलापन मिटाकर, पुष्प रूपी रूपपर लावण्यके चिह्न प्रकट करता है और साथ-साथ विस्मृति द्वारा सद् कर्मोको मिटा देता है।]

नवीनताके उपासक :

हृदयसे प्राचीनताके पुजारी तथा दार्शनिक मनसे कृष्णोपासक, कर्म द्वारा नवीनताके साथ सामञ्जस्य स्थापित करनेवाले 'बेवसि', पिछड़ी हुई भारत-सन्तानको नवयुगकी नवीनताके साथ अग्रसर होनेका सन्देश देनेमे वे कभी नही पिछड़े, बल्कि इसमे ही उन्नतिके साधनोका सन्धान करते हुए 'नवाई' गीतमे उन्होने लिखा है :—

आ हुनिरू सो जो नमूने में नओं घाटु घड़े,
नौ ज़िबानीअ में, मगरि पर्त पुराणाई पढ़े।

[वही कला है, जो नमूनेमे नया गठन घड़ डाले तथा उसकी वाणी तो नवीन हो, लेकिन उसमे प्राचीनताकी पुट हो।]

कवि इस बारेमे इतना आगे बढ गया है कि वह सौन्दर्यको भी नवीनताका मुखापेक्षी मानता है :—

जे न हरि शइ ते हणो छाप नवाई पंहिं जी
हुस्नु जोखे में विसे हूंद वडाई पंहिंजी।

[ऐ नवीनता ! यदि तू प्रत्येक वस्तुपर अपनी छाप नही लगाती, तो सौन्दर्य भी अपने महत्वको विपत्तिमे पड़ा हुआ पाता।]

वे आगे लिखते है :—

दींहु थो रोजु दिए पिरिह सां पैग़ामु अजीमु,
माँ नवाई अ खां नओं आह्यां, कदामत खां कदीमु,
रमिज़ मुंहिंजी न परूड़े त न आहे सो हकीमु
मूं सां गद जो न हले तंहिंजी थी हालति थ्ये सकीमु,
थी हुनिरिमंदु नवाईअ जे न फेरे, सां फिरे,
तंहिंजी तकिदीर चढ़ी चोट ते 'बेवसि' थी फिरे।

[प्रातःकाल होते ही दिन, नित्य प्रति हमे एक महान् सन्देश देता रहता है– 'मै नवीनसे भी नवीनतम तथा प्राचीनसे भी प्राचीनतम हूँ, वह विद्वान अथवा ज्ञानी नही,जिसने मेरे इस रहस्यको न समझा, और जो मेरे साथ नही चलता, उसकी दशा बडी दयनीय हो जाती है । कलाकार होकर यदि नवीनताके आवर्तनमें आवर्तित नही होता तो उसका भाग्य चरम सीमापर पहुँचकर भी गिर जाता है !']

गाँधीवादका प्रभाव :

विश्ववन्द्य बापू रूपी सूर्यके भारतीय आकाशपर उदित होते ही, प्रत्येक वस्तु तथा भावनाएँ उनके भावोसे अनुप्रणित हो उठी। ऐसी अवस्थामे गरीब सिन्धके ये भावुक कवि भला कैसे अछूते रह सकते थे! माँ भारतीके इस भावुक पुत्रकी लेखनी भी उन्मुक्त होकर काव्य-जगत्मे विचरने लगी और सिन्धी कवियोके लिए उसने एक नया पथ प्रशस्त किया।

किसी समय जॉर्ज पञ्चमके राज्याभिषेकपर तथा १९१४ के विश्व-युद्धमे अँग्रेजोकी सहायतामे गीत लिखनेवाले आज राष्ट्रीयताके अमर गायक हो उठे और साथ-साथ इसी पावन गगामे आगमन कर ओजपूर्ण भाषामे रचना करनेवाले कई नए कवियोंको उन्होने जन्म दिया :—

जे उण्यल हूंदी कफन मे गैरु हिन्दी तन्दु का,
लाशु मरिणे बेदि 'बेवसि' थी शकी शरिमाइबो।

[यदि मेरे कफनमे एक भी अहिन्दी तन्तु होगा तो मरनेके बाद मेरी लाश शकित होकर शरमा जाएगी।]

उनके पट्टशिष्य श्री हूदराज "दुखायल" गुनगुना उठे :—

लाशु मुंहिंजो शल, खजे आज़ादु हिन्दुस्तान में,
थ्ये न शल मुंहिंजो मरणु नाशादि हिन्दुस्तानमें,

[मेरी लाश स्वतन्त्र भारतमे ही उठे और प्रभु ऐसी कृपा करे कि मेरी मृत्यु दुखी और वैभवहीन भारतमे न हो !]

और वास्तवमे स्वतन्त्र भारतमे मृत्यु होनेकी श्री 'बेवसि' जी की इच्छा पूर्ण हुई।

गाँधीजीकी प्रत्येक विचार धाराको लेकर उनकी रचनाएँ हुई। 'किसान', 'मजदूर', 'धनवानोके अन्याय', 'गरीबकी झोपड़ी', 'विशाल हृदय', 'स्वतन्त्रता', 'नारी', 'नवीनता', 'साबरमतीका सन्त' आदि कविताओ द्वारा हमे गाँधीजीकी विचारधाराका आभास मिलता है ।

जिस समय वे लिखते है, 'अला ! झुड़े म शाल गरीबनि जी झूपिड़ी' (हे प्रभु ! इन गरीबोंकी झोपड़ियोको आँच तक न आने देना !), उस समय उनका

सहानुभूतिपूर्ण और गरीबोके दुःखमे दुखी हृदय सिमटकर उनकी झोपड़ियोंमे समाया हुआ दृष्टिगोचर होता है।

गाँधीजी अभी वर्धा या सेवाग्राम तक नही पहुँच पाये थे और साबरमतीमें ही उनके आन्दोलनोकी हवा फैल रही थी, उस समय ही अपनी अन्तर्दृष्टिसे कवि गाँधीजीकी शक्तिको भाँप गए थे और उनको इंगित कर कविने लिखा है :—

पंहिंजे आङुरि जो इशारो करि संभाले गौर सां,
आहि तुंहिंजो ही इशारो खासि गैबी जोर सां,
जे हलीः व्यो हुकुम हेकर कींहि मुखालिफ तोर सां,
हिन्दु सागरु ऐं हिमालय टकिरंदा शह शोर सां,
हिन इशारे डे दिसनि थ्यूं अज अख्यूं छाहठि किरोड़,
हिन इशारे ते खजनि बांहूं सज्यु छाहठि किरोड ।

[ऐ गाँधीजी ! बडी सावधानीके साथ अपनी उँगलीका इशारा करो, क्योकि तुम्हारा यह इशारा ईश्वरीय शक्ति द्वारा प्रेरित है, यदि किसी भी तरह तुम्हारी यह आज्ञा प्रचारित हो तो हिन्दसागर और हिमालय बडे शोरसे टकरा उठेगे। तुम्हारे इस इशारेकी ओर आज छियासठ करोड आँखे उठी हुई है, और इस इशारेपर छियासठ करोड भुजाएँ ऊपरको उठेगी।]

श्री ' बेवसि ' जी का गाँधीजीमे इतना विश्वास था कि बापूजी साबरमतीमे ही थे कि उन्हें निश्चय हो गया था कि यदि भारत माता को स्वतन्त्रता का मुकुट पहनाएँगे तो बापूजी ही —

ताजु आजादी घुरे भारत ढकणु तुंहिंजे हथां,
आहि हिन्दुस्तान खे अज लाद लांगोटये मथां

[भारत आज तुम्हारे ही हाथो स्वतन्त्रताका मुकुट धारण करना चाहता है, उसे इस लँगोटीवालेपर बड़ा गर्व है !]

उस समय इनकी रचनाओमे स्वदेश–भक्ति और राष्ट्रीयताकी झलक दिखाई पड़ती है। उन्होने मजदूरके श्रमकी सराहना की :—

बर्कतीः बाजुनि सां तुंहिंजे जोरु थो पाए जईफु,
थो पले रत तें रबीः ऐं खून ते तुंहिंजे खरीफु।

[तुम्हारी इन वरद भुजाओके कारण ही निर्बलमें शक्ति आती है और तुम्हारे ही खूनसे रबी और खरीफ (फसले) पोषित होती है।]

मालिकाणे चींचिड़े में पीड़िजणु केसीं रवा ?
पंहिंजे दिलि जे भीड अंदरि भोड़िजणु केसीं रवा ?

[ऐ मजदूर! इस स्वामित्वके कोल्हूमे पेरा जाना और उसी तरह अपने ही हृदयकी पीडासे पीडित होना कहाँ तक उचित है?]

वे मजदूरिनको इगित करते हुए कहते है:—

तूं पहिण ढोई थो रस्तनि जा ऐं टाकीं थो टकर,
थी हमालिणि बारू ढोइण लइ रहीं नितु मुन्तजिर,
हुस्न जे हालति में बणिजीं बदि निगाहुनि जो नि निशानु,
पर रखीं बेदागु दामनु अर्श जे अस्मत समानु,

[तुम रास्तोके पत्थर ढोती हो और पहाड़ काटती हो और मजदूरिन बनकर भार उठानेके लिए उत्कण्ठित रहती हो। सुन्दर रूपवाली होनेकी अवस्थामे यद्यपि तुम कुदृष्टियोका शिकार बनती हो, फिर भी स्वर्गके सतीत्वके समान तुम अपने ऑचलको निष्कलक रखती हो (यह क्या कम गौरवकी बात है!)]

तीस वर्ष पहले जब सर्वोदयकी गूँज नही उठी थी, तब 'बेवसि' की हृत्तन्त्री झकृत हो उठी थी:—

करि दुन्यां दिलि वदेरी—तूं बि रहु मां भी रहां
आणि मन वृत्तीअ में फेरो—तूं बि रहु मां भी रहाँ

[इस ससारमे अपने हृदयको विशाल बनाओ और अपनी मनोवृत्ति बदल दो, जिससे 'तुम' भी रहो और 'मै' भी रहूँ।]

पंहिंजे शाही महल मां घटि जे कंदे हिक कोठिड़ी,
बे अझे मूं जहिड़े लइ पदन्दी ठही सौ झूपिड़ी।
करि तमन्ना घटि तिखेरी—तूं बि रहु मां भी रहा।

[यदि तू अपने विशाल प्रासादसे एक कमरा भी खाली कर देगा, तो मेरे जैसे निराश्रितके लिए सुन्दर झोपडी बन जाएगी। अत अपनी तीव्र इच्छाको सीमित करो, जिससे 'तुम' भी रहो और 'मै' भी रहूँ।]

साहूकारको फटकार बतलाते हुए कवि कहता है:—

आहि तरि दामाने इशरत कंहिंजे अखि आलाणि मां?
साज़ु राहत जो वजे थो कंहिंजे तन्तुनि ताण मां?
कंहिं कयो तो नर मखे खे मुफ़्तु खाऊ मालिदारु?
आहि सा गाफ़िल ग़रीबो, शर्म शामत जो शिकारु।

[ऐ धनवान्! तुम्हारा यह विलासपूर्ण ऑचल किसके आर्द्र नयनोंसे भीगा हुआ है और यह आनन्दकी तन्त्री किसकी तॉते तननेसे बज रही है और किसने तुम-जैसे नर मक्खको मुफ्तखोर और वैभवशाली बनाया? इसके उत्तरमें वे लिखते है—'यह सुप्त अकिंचनता है, जो व्रीडापूर्ण पीड़ाका शिकार बनी हुई है!']

फाहिशी इशरत जे आदत सां वधायुइ हरि विकारु
तुंहिंजे टहिकनि ते हजारें चश्म आहिनि अश्क बारु।

[पापपूर्ण विलासी स्वभावके कारण तुमने प्रत्येक विकारको प्रोत्साहित किया है, तुम्हारी इन ठहाकोसे भरी हुई हॅसीसे सहस्रो ऑखे अश्रुपूर्ण हो उठती है।]

ये सब बाते 'बेवसि'जी ने उन दिनों लिखी थीं, जब सिन्धी भाषामे प्रगतिवादकी बू तक न थी :--

किअं न थींदी जंगि जारी, धर्म राजनि वासिते?
जो किताबनि कैद लइ थो तख़्त दिलि जे तां लहे।

[धर्म और राज्योके नामपर युद्ध क्यो न होगे ? जब ग्रन्थोकी कैदके कारण वह (परमात्मा) हमारे हृदय सिहासनोसे उतर जाता है।]

थ्यो उजड़ु दिलि जो मन्दरु दिलिबर जो घरु वैरानु आहि
कामु राजा जिति वसे, किअं रामु वेचारो रहे?

[मेरे हृदयका मन्दिर उजड गया और प्रियतमका घर भी वीरान हो गया। जहॉपर कामराजाका निवास हो, वहाँ बेचारा 'राम' कैसे रह सकता है !]

भौतिकवादके इस अन्यायको देखकर भगवान भी उनसे रूठ गया है :--

अज्ञ गरीबनि जूं कखायूं झूपिड्यूं मालिकु घुमे,
थो मढ़ीअ, मसजिदि, मन्दर, देवलि, टिकाणे खां टहे।

[आज भगवान गरीबोकी घास-फूसकी कुटियोमे चक्कर लगा रहा है। वह मन्दिरो, मसजिदो आदिसे दूर भाग रहा है।]

किसानकी ओर इगित करते हुए 'बेवसि' लिखते है :--

तुंहिंजी तस्वीर मंझां कौम जो कुन्याउ बखे,
तुंहिंजे फरियाद मां बेदाद जो वर्ताउ बखे।

[तुम्हारी तस्वीरसे ही, तुम्हारे ऊपर जाति द्वारा किया हुआ अन्याय प्रकट हो रहा है। तुम्हारी फरियादसे अन्यायका बर्ताव प्रकट हो रहा है।]

गरीबोंकी झोपड़ियोका वर्णन करते हुए जब वे कहते है .--

अला ! झुड़े म शाल गरीबनि जी झूपिड़ी ।

[हे प्रभु ! इन ग़रीबोकी झोपड़ियोंको ऑच तक न आए।]

उस समय उनके हृदयकी सम्पूर्ण सहानुभूति सिमटकर गरीबके लिए साकार हो उठती है :--

जंहिं में मज़ो मचे थो मिठे ढोढे जुआरि ते,
सादो गुज़रु विझे न तबीबनि तंवार ते,
पोढ़्यो विझे थो वाधि वदेरीं जमार ते,
गालिबु पवे न हिर्सु ख़ुशीअ जे ख़ुमार ते,
'बेवसि' जिते जलाए न चिन्ता जी चूचिड़ी,
अला! झुड़े म शाल ग़रीबनि जी झूपिड़ी।

[जिस (झोपडी) मे ज्वारकी रोटीपर ही आनन्द मनाया जाता है,सीधा-सादा जीवन निर्वाह करनेके कारण जिन्हे कभी वैद्योका मुँह नही देखना पडता, बल्कि श्रम करनेके कारण जिनकी आयु बढ जाती है और जिनके आनन्दकी मस्तीपर विलास कभी हावी नही होता, जहाँ चिन्ता रूपी चिनगारी नही जलाती — हे प्रभु, उस गरीबकी झोपडीको ऑच तक न आए।]

जीवनके लिए जो हमारे हृदयोमे दुष्ट भावना है, उसका प्रतिकार करते हुए 'इन्सान' नामक गीतमे कवि लिखता है —

आहि संसारमें इन्सान! उजालो तोखां,
तोखे को आहि भला, पाण मल्हाइण जो खियालु?
का बि आदो न अटक आहि जे बेवसि न बणीं,
आहि दुनियामें अगरि धूम मचाइण जो खियालु!

[ऐ मानव! यह ससार तुम्हीसे प्रकाशित है, क्या कुछ कर दिखानेका तुम्हारा विचार नही है? यदि ससारमे तुम्हारा धूम मचानेका विचार है तो तुम्हारे सामने कोई भी बाधा उपस्थित नही हो सकती। हाँ, यदि तुम अपनेको बेबस (विवश अथवा लाचार) न समझो।]

'जिन्दगी' नामक गीतमे कवि लिखता है :—

वियें हयातीअ जे हदुनि सां थीं अलगि, जग खां जुदा,
गचें तोखे हुई मिल्यल ब्रह्माण्ड-भाती ज़िंदगी।

[तू जीवनकी सीमाओं तथा स्वय ससारसे अलग हो गया, यद्यपि तुझे ब्रह्माण्डके कुटुम्बी-जीवनका सौभाग्य प्राप्त था!]

भूंइ में दबिजी बि किअं हो चश्मु बिजु सालिमु सुजागु,
तो रुगो निसिर्यलु सले अंदरि सुञाती ज़िंदगी।

[पृथ्वीके भीतर दबकर भी बीज किस प्रकार अखण्ड और सजग था! तुमने तो केवल निःसृत पौधेके भीतर ही जीवनको पहचाना।]

काव्य-जीवनमे श्री किशिनचन्द 'बेवसि'ने पहले पहल ईश-वन्दना तथा प्राकृतिक सौन्दर्यपर ही लेखनी चलाई। गाँधी-युगके प्रभावसे अभिभूत होकर इनकी लेखनीने देशभक्ति और राष्ट्रीयताकी आग उगली, लेकिन अहिसाके पुजारी बनकर कवि 'साबरमतीके सत' मे लिखता है--जिस समय युद्धके कष्टोके कारण पश्चिमी ससार रो रहा था, उनके आँखोसे आँसुओकी धारा प्रवाहित थी और जख्मोसे रक्त बह रहा था, उस समय उनके कानोमे गाँधीजीकी यह आवाज आई :—

कामियाबीअ लाइ कीन्हे ख़ूनु हारण जो ज़रूरु,
तेज़ु तोबुनि सां मरण जो ऐं न मारण जो ज़रूरु।

[सफलताके लिए न तो खून गिरानेकी आवश्यकता है और न भयानक तोपोसे मरने अथवा मारनेकी।]

थो तके तुंहिंजे तहिरक ते मयां शम्सो कमरु,
तुंहिंजे हलचल ते फिरे थी खासि दुनिया जी नज़र,
आहि अ इंदह ते हिन ई आजिमूदे जो असरु,
सोभ तुंहिंजी सहिकंदड़ संसार खातरि खुशि ख़बर,
जंगिजो फितिरत जो थियणो आहि इन सां खातिमो,
का बि शाहो कीन खगदो ख़ूने नाहक जो ज़िमो।

[तुम्हारे इस आन्दोलनकी ओर सूर्य और चन्द्र भी विस्मित नयनोसे ताक रहे है, और सारे ससारकी आँखे इस ओर गडी हुई है। भविष्यपर इस प्रयोगका प्रभाव होनेवाला है और तुम्हारी विजय इस हाँफते हुए ससारके लिए मगल सूचनाके रूपमे है। बुराइयाँ इसीके सामरिक द्वारा नष्ट होगी, क्योकि कोई भी राष्ट्र अन्यायपूर्ण रक्त-पातका उत्तरदायित्व नही लेगा।]

अहिसा और गाँधीवादका यदि सिन्धमे प्रचार किया तो 'बेवसि' और उनके शिष्यो "दिलगीर" और "दुखायल" द्वारा :—

पाणही दुनिया हाणि मञाींदी अहिंसा अनमोल असूलु,
ऐटामिक बमिगोले सां नत प्रलइ जो सामानु गाँधी।

[अब ससार स्वय ही अहिसाके अमूल्य सिद्धान्तको स्वीकार करेगा, अन्यथा ऐ गाँधी! उनके लिए एटामिक बमसे प्रलयका सामान होगा।]

यदि मानवताके कल्याणके लिए मानवसे उत्सर्गकी अपेक्षा करते है तो गीताके भगवानकी तरह भयानकका नित्य उत्सर्ग करते रहनेका सन्देश भी देते है :—

अरुपा रूप मन्दरमें, जलाए प्रेमजी अगिनी,
दियण लइ आप आहूती, रचीं दिलिजा दुआरा थो।

[हे रूप और रग रहित (निर्गुण) प्रभु! तुम इस रूपवाले (सगुण) मन्दिरमे प्रेमकी अग्नि जलाकर, अपनी आहुति देनेके लिए हृदयके द्वार बनाते हो।]

जहाँ एक ओर 'बेवसि' पर बापूजीका प्रभाव पडा, तो दूसरी ओर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके पथका अनुसरण करनेमे भी वे पीछे नही रहे। रवि बाबूके 'सत्य शिव सुन्दर' की झलक उनके काव्यमे जहाँ-तहाँ प्रकट है। उन्होने अपने जीवनके अन्तिम दिनोमेवे दान्त और तसव्वुफ (सूफीवाद) की गुत्थियाँ सुलझानेमे ही अपने समयका सदुपयो किया। 'गगाकी लहरो' और 'समुद्रकी शुक्तियो' मे ये भाव जहाँ-तहाँ बिखरे हुए है।

वे 'प्रार्थना' नामक गीतमे लिखते है --

चहचिटो जंहिंखां दिसां, हरि चीजमे तुंहि जो चिटो
अहिड़ी चित्तमे करि चिमिकाट सां चांडाणि तू।

[हे प्रभु! तू मेरे हृदयमे वह ज्योत्स्ना ज्योतित कर, जिससे मै तुम्हारा समारोह प्रत्येक वस्तुमे स्पष्ट रूपसे देख सकूँ।] क्योकि देखता हूँ कि --

जोग, जप तप, साधना, भगिती, समाधी, ज्ञान में,
थो दगे ही मस्तु माया जो असर अजिगरु किथे?

[योग, जप, तप, समाधि, साधना और अज्ञान आदिमे भी यह मायाका मस्त अजगर सदा काटता रहता है।]

इसका प्रतिकार तो हम प्रेमकी पीडा द्वारा ही कर सकते है:--

भीड़ धारां पीड़ नाहे, पीड बिनु नाहे खमीरु,
बिनु खमीरे नाहि शीरो, दर्दु आहि दिल पाक लइ।

[कष्टोके सिवा पीडा उत्पन्न नही होती, और पीडाके सिवाय खमीर पैदा नही हो सकता और खमीरके सिवाय चाशनी (रस) पैदा नही हो सकती। सचमुच पीड़ा ही हृदयको पवित्र बनानेवाली है।]

प्रेम सागरमें पवण सां मामता मिटिजी वई
हिन पवितिरि जल अदंरि जड़ पापजी पटिजी वई

[प्रेम सागरमे गोता लगानेसे ममत्व मिट गया और इस पवित्र जलमे अवगाहन करनसे पापकी जड़ ही नष्ट हो गई।] तो प्रियतमके लिए मन्सूर और शम्स तबरेज बनना होगा:--

शौक़ मां वठु शेर दिलि थी, शम्स तबरेजी मजी
मुहिब लइ मन्सूर थी, दाखारि रतरेजी मजी

[ऐ साधक! शेर दिल होकर शम्स तबरेजके पथका आनन्द लूटो, और प्रियतमके लिए मन्सूर बनकर रक्त बहानेका आनन्द लूटो।]

निजत्वको मिटानेमे ही वह आनन्द आएगा:—

प्रिति स्पर्श सां ख़ुदी मिरिजी, ख़ुदाईअ में अचे,
कीमियागरु कुबु आहे, लोह लह पारसु पहणु।

[प्रेमके स्पर्शसे ही खुदी (ममत्व) मिट कर खुदाई (प्रभु रूप) बन जाती है, प्रेम लोहेके लिए पारस है, कीमियागर है।]

उपनिषद्के महावाक्यानुसार:—

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'

'बेवसि' भी अलापते है.—

सघे बाणी न बधि जाणी, वरी वाणी जितां विरिचे,
जो रोशनु पाण तींहते जाण जो जल्वो वरी छा जो?

[जिसे वाणी वर्णन नही कर सकती, बुद्धि जान नही सकती, जो स्वयं प्रकाशित है, उसके लिए ज्ञानका प्रकाश क्यो? तो फिर उसे कैसे जाना जा सकता है?]

जाण जातल तां पवे जे जाम अण जातल संदी,
नूरु नेणनमे नए सिरि, सुति साजाई अचे!

[अज्ञातका ज्ञान यदि ज्ञात द्वारा प्राप्त हो जाए, तो नए सिरेसे नयनोंमें प्रकाश समा जाए, और सुरति उद्भूत हो उठे।]

अण दिठल खे जे नसीबनि सां दिठल अंदरि दिसां,
हूंद हुदे में अटलु अणजीत राजाई अचे।

[अदृष्टका यदि सौभाग्यवश दृष्यमे दर्शन हो जाए, तो अवश्य ही मेरे अन्दर अजेय शासन आ जाए।]

वे उसे और भी इस प्रकार स्पष्ट करते है:—

जे पसां खाकीअ में बाकी ऐं फना अंदरि बका,
मुक्ति खां संसार बन्दमें सर्यु सरहाई अचे।

[यदि उस अरूपका रूपमे ही दर्शन करूँ और विनाशमें ही अविनाशीका दर्शन पा जाऊँ, तो ससार-कारामे मुक्ति द्वारा विशेष आनन्द आ जाए।]

इससे प्रकट है कि 'बेवसि' अज्ञातको ज्ञात द्वारा और निर्गुणको सगुण द्वारा ही प्रकाशमे लाना चाहते है। लेकिन इनकी निराकारकी साधना सगुण द्वारा होते हुए भी आत्मीय पीड़ामे न होकर पर पीडामे निहित है।

क़ीमती हीरे कणीअ खां, आहि कतिरो क़ीमती,
खूनु, जो हार्यलु खुशीअ सां, पर पघर जे वासिते।

[अमूल्य हीरेकी कनीसे वह खूनका कतरा विशेष मूल्यवान् है, जो दूसरेके पसीने (कष्ट) के लिए गिराया जाता है।] फिर भी वह निष्फल नहीं जाता ---

बाफ धरितीअ तां वियल, बूंद बहारी थी वरे,
थो अचे पंहिंजो दिनो, पाण लइ नइमत बणिजी।

[पृथ्वीपरसे उठी हुई बाष्प, आनन्ददायक बूंद बनकर लौटती है। अपने हाथो दी हुई वस्तु अपने लिए नियामत (वैभव) बन जाती है।]

द्वन्द्वो द्वारा किस प्रकार प्रभु लीला रचाता है, अथवा अनेकत्वमे एकत्व तथा अन्य कई वेदान्त तथा तसव्वुफके विषयोको लेकर 'बेवसि' साईकी रचना हुई है।

'बेवसि'ने अपने युगकी भावनाओकी बडे ही सुन्दर ढगसे अभिव्यक्ति की है। उनके कला पक्ष अथवा भाव पक्षके बारेमे इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि उनकी कविता कोई ऐसी ढोल नही है, जिसपर गुजरनेवाले लोग डकेसे चोट करते जाएँ, फिर उससे भले ही असुन्दर और बेढगे आवाज क्यो न निकले। उनका काव्य आरकेस्ट्राके समान है, जिसमे सितार, बीन, शहनाई, मृदग आदि कई साजोका समावेश रहता है और जिसमेसे सामञ्जस्यपूर्ण स्वर निनादित करनेके लिए बहुत ही विज्ञ और चतुर कलाकारकी आवश्यकता है।

'बेवसि' ने पाठ्य मुक्तकोंसे अधिक गीति मुक्तक लिखे है। वे अपने युगके उत्तम गीतकार थे। उन्होने युग व्यापी सभी विषयोंको विभिन्न छन्दो द्वारा ध्वनित किया है। अत. यह कहनेमे कोई हिचकिचाहट नही है कि वे सिन्धी काव्यमे युगान्तर उपस्थित करनेवाले तथा उसके प्रतिनिधि कवि थे। 'बेवसि' के बाद भी उनके शिष्योंने, जिनमे श्री हूदराज "दुखायल" और "दिलगीर" अग्रणी है, उनकी यश पताकादृढ़ हाथोसे पकड़ रखा है और अब भी उनका नाम रोशन कर रहे है।

• •

किशिनचन्द 'बेवसि'

[काव्य-सञ्चय]

१. क़ुदिरत वारा !

(सुरु–'तिलगु')

सभु कनि तुंहिंजी साराह–क़ुदिरत वारा !
निर्मलु जोती नूरु निज़ारा।

कोटां कोटि बणायइ धरित्यूं-सहसें सिज चंड तारा कतियूं,
जिनि जो अन्तु न पारा–क़ुदिरत वारा ॥१॥

गुलनि अंदरि सुरहाणि धरीं थो, मोत्युनि सां महिराण भरीं थो
हीरा लाल हज़ारा–क़ुदिरत वारा ॥२॥

जर्दाहिं वणनि ते वाउ अचे थो–पन पन मां परिलाउ अचे थो
छिम छिम जा छिमिकारा–क़ुदिरत वारा ॥३॥

चुंहिंब चतुनि एं चींहनि खोली, बुलिबुलि कोयलि बोले बोली
मोर नचनि नामियारा–क़ुदिरत वारा ॥४॥

अजबु बणायइ बिजिल्यूं बादल–बूंदूं बरस बरस कनि थाधलि,
वाजट कनि वसिकारा–क़ुदिरत वारा ॥५॥

मुल्कु मिड़ियोई मन्दरु आहे–आगो सभजे अंदरि आहे,
देहुनि मंझि दुआरा–क़ुदिरत वारा ॥६॥

सास अंदरि जो सासु खजे थो, 'बेवसि' अनहदि नादु वजे थो,
नौबत नींहं नक़ारा–क़ुदिरत वारा ॥७॥

१. स्रष्टा !

(स्वर–' तिलंग ')

ओ स्रष्टा ! सब तुम्हारी प्रशस्ति कर रहे है।
ओ निर्मल ज्योति ! ओ प्रकाश द्रष्टा ! !

कोटि-कोटि लोकोंकी तुमने रचना की। ओ स्रष्टा ! तुमने सहस्रों सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और ग्रह उपजाये, जिनका अन्त नही है ।।१।।

सुमनोंमे सौरभका सञ्चार करते हो, मोतियोंसे समुद्रको भर देते हो। उपजाते हो, हजारों हीरे और लाल, ओ स्रष्टा ! ।।२।।

जब वृक्षोंपर समीरण दौड़ लगाता है, तब पत्ते-पत्तेसे छम-छमकी प्रतिध्वनि उठती है, ओ स्रष्टा ! ।।३।।

कीर, कोयल और बुलबुलोंने तुम्हारी प्रशसामे चोंच खोल दी है। सुन्दर मयूर नाच रहे है, ओ स्रष्टा ! ।।४।।

विचित्र बिजली और मेघोंका तूने निर्माण किया है। बूँदे बरस-बरसकर ठण्डक पहुँचा रही है, बादल कड़क रहे है, ओ स्रष्टा ! ।।५।।

यह सारा विश्व ही मन्दिर है, जिसमे आगा (स्वामी) प्रत्येकके हृदय में विराजमान है, प्रत्येक शरीररूपी मन्दिर बना हुआ है,ओ स्रष्टा ! ।।६।।

श्वासके अन्दर जो प्रश्वास उच्छ्वसित है, वह अनहदका नाद बज रहा है और बज रही है स्नेह-सिक्त भेरियाँ, ओ स्रष्टा ! ।।७।।

२. शह सुवारी

नेण दर्सन लाइ खोल्यो शह सुवारी थी अचे,
दिलि अंदरि दरिबारि लगंदी ज़ाति बारी थी अचे ।
छोह् मां छुटिकी हवा-कखु पनु उदी पासे थियो,
वाउ ख़ुदि शहराह ते पाइण बहारी थी अचे ।।१।।

अतुरु छिणिकार्यो पटनि ते बादलनि बूंदूं हणी,
गुल छटण लइ अणमया खणंदी बहारी थी अचे ।।२।।
दार जे दौंकनि सां वण छेजं हणनि था हेज मां,
पनलुदनि ताड़ियूं वजनि, पदमिणि पियारी थी अचे ।।३।।

रअद जा बधंदे नक़ारा कई पख्युनि शरना शुरू,
खिवणि दिलि खोले नचे, नौबत नियारी थी अचे ।।४।।

हुकुम थ्यो सिज खे त सोना वर्क़ रस्तनि ते चढ़नि,
दिसु त किरणुनि जे कम्युनि जी कीअं क़तारी थी अचे ।।५।।

मैरिफति रूपी मशालूं, थ्यूं बरनि हर शइ अंदरि,
चहचिटे चांडाणि सां चौदिसि दियारी थी अचे ।।६।।
आस्मां ते कियो सितारनि ज़ौक़ मां ज़रीं लिबासु
हीअ सलामी अ लइ नज़रि तकिड़ी तियारी थी अचे ।।७।।

चंड जे साबुण चकीअ सां चट लगी चमिको खुल्यो,
साफ़ु गजि धर्तीअ मथां जणु खीर वारी थी अचे ।।८।।
कींहजे तजिमल लाइ ही 'बेवसि' जशनु जल्सो लगो,
ग़ैब जे पर्दे मझां कहिड़ी कुमारी थी अचे? ।।९।।

———

२. विराटकी रथ यात्रा

दर्शनार्थ अपने नयनोंको खोलो, क्योंकि विराटका रथ आ रहा है। हृदयके अन्दर दरबार जुड़ेगा, क्योंकि महान्का आगमन हो रहा है।

पवन बड़े वेगसे चल रहा है और मार्गके घास-फूस उड़कर दूर हो गए है। वायु देवता पथपर झाड़ू देनेके लिए स्वयं आ पहुँचा है ।।१।।

मेघोंने बूँदे बरसाकर चारों ओर इत्र छिड़क दिया है, वसन्त असंख्य फूलोंको मार्गपर छितरानेके लिए ढोकर ले आया है ।।२।।

टहनी रूपी डंकोंको बजा-बजाकर पेड़ सानन्द नृत्य कर रहे हैं। पत्ते हिल-हिलकर तालियाँ बजा रहे है। प्रियतमा पद्मिनी आ रही है ।।३।।

वर्षा द्वारा भेरियाँ बजती सुनकर, विहग वृन्दने शहनाई बजाना शुरू किया है। विद्युत हृदय खोलकर नाच रही है, क्योंकि न्यारी नौबत आ रही है ।।४।।

अरुण देवको आज्ञा हुई है कि मार्गको स्वर्ण पत्रों (वर्क) से मढ़ दिया जाए। देखिए, किरण-श्रमिकोंकी पक्तियाँ किस प्रकार उतर रही है! ।।५।।

भक्ति रूपी उल्काएँ प्रत्येक वस्तुमे प्रज्वलित हो उठी है। आनन्द-दायिनी चन्द्रिकासे चतुर्दिक दीपावली सज उठी है ।।६।।

आकाशमे ग्रह-नक्षत्र और सितारोंने स्वर्णिम आभापूर्ण वस्त्र धारण किए है। उनके अभिवादनके लिए बड़ी तीव्रतासे तैयारी दृष्टिगत हो रही है ।।७।।

चन्द्रमा रूपी साबुनके लगनेसे चमक-दमक निखर उठी है। धवल फेनने पृथ्वीपर दूधकी धारा बहा दी है ।।८।।

किसके शान-शौक़त और अभिनन्दनमे यह समारोह हो रहा है। अदृश्यके पटसे यह कौन कुमारी आ रही है? ।।९।।

३. तूं

तूं ई सिज में सोझिरो ऐं चंड में चांडाणि तूं,
सूंहं ऐं सोभ्या गुलनि में, पुणि सुगंधि सुरहाणि तूं ।

बादलनि मां थो वसीं बर्साति बूंदूं बणी,
तेजु बिजलीअ जो तज्जलो ऐं ककर काराणि तूं ॥१॥

छा पटापटि इंडलठि में थो बखे तुंहिंजो लकाउ,
सुबुह में थिएं सोन रंगो, शाम में गाढ़ाणि तूं ॥२॥

पुरु करीं थो पाण सां पोलारु हिन संसार जो,
थी गिरह, तारा, सितारा ऐं अखुटु नीलाणि तूं ॥३॥

थो लुदी लहिरुनि मथां, छोल्युनि मथां छुलंदो वतीं,
समुंडजी सख़्ती बि तूं, महिराणजी माठाणि तूं ॥४॥

तेखु तुंहिंजो वाउ, वाचूड़े, तिखे तूफ़ान में,
हीर में हलिकाणि तूं, ऐं बाफ में आलाणि तूं ॥५॥

माक मोत्युनि हारु थी सींगारु सब्ज़ीअ जो करीं,
तूं जवाहिर में झलक, लालनि अंदरि लालाणि तूं ॥६॥

सर्सु तो साहिब संदी आहे सिफ़ति साराह खां
ख़ासि ख़ूब्युनि जो खजानो ऐं गुणनिजी खाणि तूं ॥७॥

बिरह 'बेवसि'! थो उथे हर रूप मां तुंहिंजो रंगी,
ताणि तूं मुंहिंजो तलब खे पारि पंहिंजे आणि तूं ॥८॥

———

३. तू

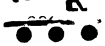

तू ही सूर्यमें प्रकाश है,चन्द्रमाकी चन्द्रिका है।
तू ही फूलोंमे सौरभ तथा सौन्दर्य है।

तू ही मेघोंकी बूँदें बनकर बरसता है। विद्युत्का तीव्र प्रकाश तू ही है और तू ही है मेघोंकी श्यामलता ।।१।।

इन्द्रधनुषमें रंग-बिरंगे आवरणोंमे तुम्हारा ही सौन्दर्य झलकता है, तू उषाकी स्वर्णिम विभा है और सन्ध्याकी रक्तिम छटा भी तू ही है ।।२।।

इस संसारके पोलार (आकाश)को तू ही अपनेसे ओतप्रोत करता है। असख्य तारे, ग्रह-नक्षत्र और नील सन्ध्या-आभा तू ही है ।।३।।

तू ही लहरोंपर दोलायमान और उच्छलित है। समुद्रकी कठोरता भी तू है और महार्णवकी शान्ति भी तू ही है।।४।।

वायु, वात्याचक्र और तूफानमे तेरी ही तीव्रता है। समीरमें हलकापन भी तू है तथा बाष्पकी आर्द्रता भी तू ही है।।५।।

हिम-बिन्दुओंकी माला बनकर हरित पौधोंका शृंङ्गार करते हो। तू जवाहरोंकी ज्योति और लालोंकी लाली है ।।६।।

हे प्रभु ! तू अवर्णनीय तथा प्रशस्तिसे परे है। तू विशिष्ट निधि तथा गुणोंका आगार है ।।७।।

हे नए रग रचनेवाले ! तेरे प्रत्येक रूपसे विरह उत्पन्न होता है। अतः मेरी उत्सुकताको आकर्षित कर मुझे अपने निकट ले आ ।।८।।

---

४. होतु

आहे मशहूरू आलिम में, जफ़ा तुंहिंजी, वफ़ा मुंहिंजी,
हक़ीक़त में मगरि आहे, वफ़ा तुंहिंजी, जफ़ा मुंहिंजी ।

हजारें चश्म रोशन सां, अचीं तारनि सितारनि सां,
तदहिं भी दिलि कदूरत खां, न थी आहे सफ़ा मुंहिंजी ॥१॥

निमकु तुंहिंजो सदा खाई, निमिति तुंहिंजे न दियां पाई,
जगत में आहि हीअ जाई, सखा तुंहिंजी, ख़ता मुंहिंजी ॥२॥

कर्यो सींगार सौ साई, मिलण लाइ होतु हिरिखाईनि,
न पर पेरो अन्दरि पाई, दिसी घटि चाहिना मुंहिंजी ॥३॥

शिकारी शौक़ु थ्यो पैदा, लथा सिर बेज़बाननि जा
उपाया तो त मूं मार्या, दया तुंहिंजी हचा मुंहिंजी ॥४॥

सुखनि में साफ़ु विसिरी व्यें, दुखनि मे यादि मस मस प्यें,
तदहिं भी दाति दातर दियें, तबइ, जे बेहया मुंहिंजी ॥५॥

कहां कहिणी घणी सुहिणी, रहां रहिणी मगरि सखिणी,
वदाईअ लइ वहिम वहिणी, थी 'बेवसि' वासिना मुंहिंजी ॥६॥

———

४. प्रियतम

सारे विश्वमें तुम्हारी कठोरता और मेरी विश्वास पात्रता प्रसिद्ध है, लेकिन वास्तवमे सुशीलता तुम्हारी है और कठोरता मेरी।

सहस्रों उद्भासित नयनोंसे ग्रह और नक्षत्रोंके रूपमे आते हो, फिर भी मेरा हृदय ईर्ष्या रहित नही हो सका है ॥१॥

सदा तुम्हारा नमक खानेपर भी तुम्हारे निमित्त एक कौड़ी भी नही देता। संसारमे निश्चय ही तुम्हारी उदारता और मेरा अपराध प्रसिद्ध है ॥२॥

प्रियतम ! तुम्हे रिझानेके लिए सैकड़ों प्रकारके शृंङ्गार करते हैं, लेकिन मेरी लालसाकी कमीके कारण तुम भीतर पॉव तक नहीं धरते हो ॥३॥

मेरे हृदयमे आखेटका शौक पैदा हुआ और मूक प्राणियोंके सर कटे। तुमने उपजाए और मैंने मारे। इससे तुम्हारी दया और मेरी हिसा वृत्ति प्रकट होती है ॥४॥

सुखोंमे विस्मृत हो गए और कष्टोमे जाकर याद आए, तथापि हे दाता ! तुम अजस्र दान दिए जाते हो, फिर भी मै निर्लज्ज हूँ ॥५॥

बाते तो बड़ी सुन्दर-सुन्दर करता हूॅ, लेकिन मेरा आचार तथ्य रहित है। मेरी वासना, अहंकार और भ्रमके वशीभूत हो गई है ॥६॥

---

५. साबरमतीअ जो सन्तु

तूं किरोड़ें हिंदुवास्युनि बेज़िबाननि जी ज़िबान,
तुंहिंजी ख़ामोशी बताए तेज़ु तूफ़ानी बयानु,
मुर्कमें तुंहिजे समायल सर्सु दरिदी दास्तानु,
तुंहिजे पेशानीअ मंझां साबितु सचाईअ जो निशानु
पाण ते परिक्षा वठी पोइ की बि कहिणीअ सां कहीं,
सो चवणु चाहीं न ब्ये खे जो न ख़ुदि रहिणीअ रहीं ॥१॥

वीर क़ुर्बानी मंदर में दर्द जे देवीअ अगियां,
छा न छा भेटा धरी तो शौक एं श्रद्धा मंझां,
दिलि, दिमाग़ु एं बलु, बधी, जिंदु जानि चाढ़ियइ चाह सां,
मालु मिल्कियत एं कुटंबु परिवारु मुल्की प्यार तां,
आदर्श ओदो अमुलु, हीरो हयातीअ जो रखी,
सूर सेजा तां शहादत जी मिठी माखी चखी ॥२॥

तो जर्दाहि जाचो गुलामीअ जे मुंझियल तस्वीर खे,
कारिगरि जातो न की शमिशेर या तक़िरीर खे,
माठि सां मेटणु घुर्यो तदिबीर सां तक़िदीर खे,
रमिज़ सां टोड़णु घुर्यो, हिन जुल्म जे जंजीर खे,
जोरु जिस्मानी छद, तो राजु रूहानी सल्यो,
एं अहिंसा जो नओं हथियारु हैरानी सल्यो ॥३॥

मग़िरबी दुनिया रुनी थे जंगि जूं सख़ित्यूं सह्यो,
नीरु नेणनि मां वह्यो थे, ख़ूनु ज़ख़मनि मां वह्यो,
जिनि जथा थी जंगि खे पाड़ां पटण लइ पे पह्यो,
ओचितो आवाज़ु ही कन ते अची तिनि जे रह्यो,
कामियाबीअ लाइ कीन्हे ख़ूनु हारण जो ज़रूरु,
तेज़ु तोबनि सां मरण जो एं न मारण जो ज़रूरु ॥४॥

५. साबरमतीका सन्त

तुम कोटि-कोटि मूक भारतीयोंकी वाणी हो। तुम्हारी शान्ति तीव्र प्रभञ्जनका आगमन है। तुम्हारी मुसकराहटमे पीड़ित हृदयोंकी कथा समाई हुई है। तुम्हारे ललाटसे सत्यताके चिह्न प्रकटित हैं। अपने ऊपर प्रयोग करनेके बाद ही वाणीसे कुछ कहते हो। जिसपर स्वयं आचरण नही किया, वह बात किसी अन्यसे कहना नही चाहते ।।१।।

हे वीर! तुमने बलि-मन्दिरमे पीडा देवीके आगे श्रद्धा और प्रेमसे क्या-क्या भेट नहीं रखी! हृदय, मस्तिष्क, बल, बुद्धि, तन, मन, धन तथा कुटुम्ब परिवार, आदिकी भेट चढाई। देश-प्रेमकी बलि-वेदीपर क्या-क्या न्यौछावर नही किया? अमूल्य जीवन-हीरकको आदर्श बनाकर, शूल शय्यासे बलिदानके मधु (शहद) का आस्वादन किया ।।२।।

तुमने जब पराधीनताकी उलझी हुई तस्वीरकी परख की, तब तुमने तलवार और भाषण आदिको अनुपयुक्त समझा, तब शान्तिके द्वारा ही भाग्यको युक्ति तथा श्रम द्वारा पलटना चाहा। तुमने इन अन्यायकी शृङ्खलाओंको चातुर्यपूर्ण युक्तिसे तोड़ना चाहा। शारीरिक शक्तिका त्याग कर तुमने आत्मिक शक्तिका मार्ग प्रदर्शित किया और अहिसाका आश्चर्यजनक नया अस्त्र बतलाया ।।३।।

जब पश्चिमके लोग युद्धके कष्टोंके कारण त्राहि-त्राहि कर उठे थे, जिनकी आँखोंसे अश्रु-धारा और घावोंसे खून टपक रहा था, जो गुटबन्दी कर युद्धका आमूल उन्मूलन करनेके लिए विचार विमर्श कर रहे थे, अचानक उनके कानोंमे यह आवाज पहुँची—'सफलता-प्राप्तिके लिए न तो खून गिरानेकी आवश्यकता है और न तेज तोपोंसे मरने और मारनेकी।' ।।४।।

थो तके तुंहिंजे तहिरक ते मथां शम्सो क़मर,
तुंहिंजे हलचल ते फिरे थी ख़ासि दुनिया जी नज़र,
आहि आइंदह ते हिन ई आजिमूदे जो असर,
सोभ तुंहिंजी सहिकदंड़ संसार ख़ातरि ख़ुशि ख़बर,
जंगिजू फ़ितिरत जो थियणो आहि उन मां ख़ातिमो,
का बि शाही कीन खणंदी ख़ून नाहिक जो ज़िमो ।।५।।

तुंहिंजे हिम्मत जे अगियां मुश्किल न पहुचणु कोहकाफ़ु,
तुंहिंजो ख़ामोशी तरीको ख़ूनिरेज़ीअ जे खिलाफ़ु,
तुंहिंजें पासे प्रेमु ऐं पाकेज़िगी, इन्साफ़ु साफ़ु,
तुंहिंजे साथ्युनि जो सफ़ाई आहि शीशे खां शफ़ाफ़ु,
चोट तुंहिंजी नाहि कंहिं भी खासि सां या आम सां,
थो लड़ीं आला असूलनि ते सिरिश्ते ख़ाम सां ।।६।।

पंहिंजी आङुरि जो इशारो करि संभाले ग़ौर सां,
आहि ही तुंहिंजो इशारो ख़ासि ग़ैबी ज़ोर सां,
जे हली व्यो हुकुम हेकर कंहिं मुख़ालिफ़ तोर सां,
हिन्दु सागरु ऐं हिमालयु टकिरंदा शह शोर सां,
हिन इशारे दे दिसनि थ्यूं अज अख्यूं छाहठि किरोड़,
हिन इशारे ते खजनि बांहूं सजं छाहठि किरोड़ ।।७।।

जंहिंजे रूहानी रहतिमें आहि 'बेवसि' सादिगी,
जंहिंजे चहिरे जे चमक मां आहि ताबां ताज़िगी
जंहिंजे ख़लिक़त में न कंहिं लइ नफ़िरती नाराज़िगी,
आहि तंहिं साबरमतीअ जे सन्तजी आज़ादिगी,
ताजु आज़ादी घुरे भारतु ढकणु तुंहिंजे हथां,
आहि हिन्दुस्तान खे अजु लाद लांगोटिये मथां ।।८।।

——————

तुम्हारे द्वारा प्रवर्तित आन्दोलनपर सूर्य और चन्द्र टकटकी लगाए है, और तुम्हारी हलचलपर संसारकी विशेष रूपसे दृष्टि गड़ी हुई है, क्योंकि तुम्हारे इस प्रयोगका प्रभाव भविष्यपर पड़नेवाला है। तुम्हारी विजय हाँफते हुए संसारके लिए शुभ सूचना है। इसके द्वारा ही सामरिक उपद्रवोंका अन्त होनेवाला है। कोई भी राष्ट्र अन्यायपूर्ण खून-खराबीका उत्तरदायित्व नही लेगा ।।५।।

तुम्हारे उत्साहके आगे कोहकाफ (एक पर्वत विशेष) पर पहुँचना कठिन नही है। तुम्हारा शान्तिपूर्ण तरीका खून-खराबीके विरुद्ध है। तुम्हारे पक्षमे प्रेम, पवित्रता और न्याय है। तुम्हारे साथियोकी कार्यदक्षता कॉचसे भी अधिक पारदर्शी है। तुम्हारा विरोध किसी खास (विशेष) अथवा ,आम (साधारण) से नही है। तुम उच्च आदर्शोपर डटकर न्यायपूर्ण पद्धतियोंसे लड़ते हो ।।६।।

सोच-समझकर ही अपनी उँगलीसे सकेत करो, क्योंकि तुम्हारे इंगितके पीछे ईश्वरीय शक्ति है। यदि तुम्हारे इस इशारेकी आज्ञा किसीके विरोधमे चली गई तो फिर हिन्द सागर और हिमालय, शाही शोरके साथ टकरा उठेगे। तुम्हारे इस संकेतकी ओर आज छियासठ करोड़ आँखे उठी हुई है। इस इंगितपर छियासठ करोड़ भुजाएँ उठ खड़ी होंगी ।।७।।

तुम्हारी रहन-सहनमे सादगी समाई हुई है। तुम्हारे चेहरेपर ताजगीकी चमक रौशन है, जिसमे मानव जातिके लिए न घृणा है, न रोष है। उस साबरमतीके सन्तकी ही यह स्वतन्त्रता है। भारत आज तुम्हारे ही हाथों स्वतन्त्रताका मुकुट पहनना चाहता है। आज भारतको लँगोटीवालेपर बड़ा गर्व है ।।८।।

———————

६. शाइरु

तो में हर दिलि जे टिकण लाइ लभणु जाइ खपे,
हर ज़माने जी ग़ज़ा तो में खियण लाइ खपे,
जे भञीं दिलि, त गढण लाइ बि मोम्याइ खपे,
जोश तुंहिंजे सां हुअणु होशु बि हमिराहु खपे,
जंहिं खे तुनिको प्यो हणीं तंहिं खेई वेतरि प्यो वणीं,
जा सघे गण न गणे, अहिड़ी तूं गणगोत गणीं ।।१।।

बोल बोलण थी लगे तो मां ज़िबानुनि जी ज़बां,
बे बयानीअ खे मिले तुंहिंजे वसीले थो बयां,
गुप्तु इसिरार करीं ग़ैबजे पर्दे मां अयां,
आणी सागर खे थो साग़र में, करीं मूइमियां,
बोध–स्पर्श खे कला आहि थियल कहिड़ी ?
जंहिंसां हरि जिन्स वजे साज़ सुरीले जहिड़ी ।।२।।

पाण सां परु प्यो खणीं, साणु न पर पाणु खणीं,
पंहिंजे ग़रज़ुनि जो या घुरिजुनि जो न कुझु माणु खणीं,
साथु संसार जे सूरनि जो सजरु साणु खणीं,
ख़ूनु दिलि दीं प्यों ख़ुशीअ सां न मगरि जोण खणी,
आगि आपे खे देई जोति जगाईं जग में,
रोशिनी देह खे दीं, जानि जलाए अग में ।।३।।

लहिर बिजलीअ जी तिखी पंहिंजे जा जज़िबनि में भरीं,
तंहिंसां हिक जाइ तां हरि जाइ थो फैलाउ करीं,
जिस्म मुर्दह में बि हिक वारि नई जानि भरीं,
हर तहिरक में जमां तोदे, जमां दे तूं वरीं,
तुंहिंजो वीचारु ऐं वाणी, ऐं कर्मु सभु सफलो,
जाति मां दाति लही तो मां करे आमु भलो ।।४।।

६. कवि

तुममें प्रत्येक हृदयमे स्थित होनेके लिए स्थान अपेक्षित है और अपेक्षित है प्रत्येक युगकी भोज्य सामग्री आत्मसात् करनेकी शक्ति। यदि कोई हृदय तोड़ता हो तो उसके मिलानेके लिए मोमिया (मरहम) भी चाहिए, तुम्हारे आवेशके साथ सद्बुद्धिका समावेश भी अपेक्षित है। तुम्हारा व्यंग भी स्पृहणीय हो, कठिनतासे समझमे आनेवाली वस्तुको भी ग्रहण करनेकी बुद्धि तुममे अपेक्षित है ।।१।।

मूक व्यक्तियोंकी वाणी तुम्हारे द्वारा ही बोलती है। अवर्णनीयको तुम्हारे द्वारा ही वर्णित होनेका अवलम्ब मिलता है। गुप्त चमत्कारोंको परोक्षके पटसे तुम्ही प्रकट करते हो। सागरको गागर (प्याले)मे भरकर सञ्जीवनी बना देते हो! तुम्हारी बुद्धि-स्पर्शको ऐसी कौन-सी कला प्राप्त है, जिससे प्रत्येक वस्तु मधुर वाद्यकी तरह झंकृत हो उठती है ।।२।।

परको अपने साथ वहन किये चलते हो, लेकिन अपनेको लेना भूल जाते हो। अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओका परिमाण तक साथ नही लेते हो। संसारकी वेदनाओंको साथ-साथ लिये चलते हो। बड़ी प्रसन्नतासे हृदयके रक्तका उत्सर्ग करते हो, फिर भी तुम्हे उसका भान नही होता। स्वकीयता और अहको आग लगाकर ससारमे ज्योति जगाते हो। पहले अपनी जान जलाकर ससारको प्रकाशसे पूर्ण कर देते हो ।।३।।

विद्युतसे भी वेग पूर्ण लहर अपने भावोमे भरते हो। उसके द्वारा एक ही स्थानसे सर्वत्र प्रसारण करते हो। एक बार मृत प्राणीमे भी नव-जीवनका सञ्चार कर देते हो। प्रत्येक आन्दोलनमे युग तुम्हारी ओर और तुम युगकी ओर झुकते हो। तुम्हारे भाव, वाणी और कर्म सभी सफल है, जब कि तुम महत्से दान (प्रेरणा) लेकर जनताका कल्याण करते हो ।।४।।

अहिड़े कंहि औजि रसी तुंहिजे रहणजी दुनिया,
कंहि कशशि सां न जितां आहि लहण जी दुनिया,
आहि अण दालु, अचलु तुंहिजे पहण जी दुनिया,
कंहि न वंहिवार जे वाहुड़ मे वहण जी दुनिया,
राति चोदसि जी चिटी या कि उमासी कहिड़ी,
जारी मोत्युनि जे पुठ्यां सागी तलाशी बहिरी ॥५॥

खाकि पेरनिजी फ़लकु तुंहिजे चुमण लाइ अचे,
हीर हुबिकार भरी तोसां घुमण लाइ अचे,
मौत—सेजा ते बक़ा तोसां सुम्हण लाइ अचे,
वजदु ऐ रक्सु बि 'बेवसि' थी झुमण लाइ अचे,
दिलि जे दरियाअ मे सा मौज ऐं मस्ती न हुजे,
ऊच शाइरजी जमाने में जे हस्ती न हुजे ॥६॥

———

तुम्हारे निवासका यह संसार उन्नतिकी उस पराकाष्टाको पहुँच गया है, जहाँसे वह किसी भी आकर्षणसे निम्न गामी नहीं हो सकता। तुम्हारे प्रस्तरकी दुनिया अचलकी तरह अविचल हो गई है, वह व्यवहारके किसी भी प्रवाहमे प्रवाहित होनेवाली नही है। पूर्णिमाकी चन्द्रिका पूर्ण अथवा अमावस्याकी तम पूर्ण तमिस्रा ही क्यो न हो, लेकिन तुम गहरे समुद्रमें पैठकर मोतियोंकी शोध जारी रखते हो ।।५।।

स्वर्ग भी तुम्हारा पद-रज चूमनेके लिए आता है। सौरभ पूर्ण समीरण तुम्हारे साथ विचरण करनेके लिए आता है। मृत्यु शय्यापर अमरता तुम्हारे साथ सोनेको आती है। चाहे नृत्य हो चाहे समाधि, दोनो ही तुम्हारे साथ झूमनेको आती है, हृदय सागरमे वह आनन्द और मस्ती ही न आती, यदि युगमे महाकविका अस्तित्व न होता ।।६।।

———————

७. वदी दिलि

करि दुनिया में दिलि वदेरी–तूंबि रहु मां भी रहां,
आणि मन-वृतीअ में फेरो–तूं बि रहु मां भी रहां,
अण अज़ाज़त खां न आहे, शख़्सियत में जाइ जे,
दिलि जे कंहिं हमिदर्द भाङे में भला थोरी त दे,
तुंहिंजी मुंहिंजो करि झकेरी, तूं बि रहु मां भी रहां ।।१।।

गरिचे हमि वतनी न आहीं, देस वासी थी गुज़ारि,
देस वासीअ खां वदो, दुनिया वासी थी निहारि,
धरि नज़र पुख़्ती पकेरी, तूं बि रहु मां भी रहां ।।२।।

तंगि मज़हब में न मापूं, क़ौमियत में जाइ दे,
भाइपीअ, इन्सानियत, रूहानियत में जाइ दे,
छदि दुईअ जी दीद मेरी–तूं बि रहु मां भी रहां ।।३।।

पंहिंजे शाही महिल मां, घटि जे कंदें हिक कोठिड़ी,
बे अझे मूं जहिड़े लइ, पवंदी ठही सौ झूपिड़ी,
करि तमन्ना घटि तिखेरी, तूं बि रहु मां भी रहां ।।४।।

तुंहिंजे दस्तर ख़्वान तां जेकी वञे अफ़िरादु थो,
बालफ़िज़ूलीअ जे हथां जेकी थिये बरिबादु थो,
तंहिंते करि चौकसि चङेरी–तूं बि रहु मां भी रहां ।।५।।

इशिरती प्याले मां तुंहिंजे बूंद जे हिकिड़ी बचे,
हूंद दाणा अन्न जा थी कूत ग़रिबा में अचे;
थिए बचति बर्कत भलेरी–तूं बि रहु मां भी रहां ।।६।।

बाग अशिरत तुंहिंजे मां जे पूर कंडनि जा बचनि,
बे भित्युनि भूंगनि भितुनि जा हूंद थी लोढ़ा पवनि,
समुझ रखु सालिमु सचेरी–तूं बि रहु मां भी रहां ।।७।।

मुल्क गीरीअ जी हवसि ? हिन पेट चिन्ता जे समे !
ख़ूनु हारण जी इच्छा ? 'बेवसि' सभ्यता जे समे !
रोज़ु रोशन में अंधेरी ! तूं बि रहु मां भी रहां ।।८।।

———

७. विशाल हृदय

संसारमें रहकर अपने हृदयको विशाल बनाओ। तुम भी रहो और मैं भी रहूँ। अपनी मनोवृत्तिमें परिवर्तन लाओ–तुम भी रहो, मै भी रहूँ।

यदि कौटुम्बिक सम्बन्ध न होनेके कारण तुम्हारे वैयक्तिक जीवनमें स्थान नही, तो भी सहानुभूतिपूर्ण हृदयके किसी कोनेमे थोड़ा (स्थान) तो दे दो। 'तेरी'और 'मेरी'को कुछ सीमित कर 'तुम' भी रहो,'मै' भी रहूँ।।१।।

यदि प्रान्तवासी नही हो, तो भला देशवासी बनकर रहो। देशवासीसे बढ़कर विश्ववासीका दृष्टिकोण धारण करो। अपनी दृष्टिको दृढ़ और विश्वास-पूर्ण बनाओ। 'तुम' भी रहो,'मैं' भी रहूँ। ।।२।।

तग मजहबोंमें सीमित न हो जाओ। राष्ट्रीयताको स्थान दो,भ्रातृत्व, मानवता तथा आत्मिकताको स्थान दो। द्वैत भावनाकी मलिन दृष्टिका त्याग करो। 'तुम' भी रहो, 'मै' भी रहूँ ।।३।।

यदि अपने विशाल प्रासादमें एक कोठरी भी खाली कर दोगे, तो वह मेरे जैसे निराश्रितके लिए एक झोपड़ी बन जाएगी। अतः अपनी तीव्र तृष्णाको जरा सीमित करो। 'तुम' भी रहो 'मै' भी रहूँ। ।।४।।

तुम्हारे भोजनके चौकेसे जो व्यर्थ चला जाता है, अपव्ययके कारण जो कुछ बरबाद होता है, उसपर ठीकसे चौकसी रखो। 'तुम' भी रहो, 'मैं' भी रहूँ। ।।५।।

तुम्हारे विलासी प्यालेसे यदि एक बूंद भी शेष रह जाए तो वह अनाजके दाने बनकर किसी गरीबकी खाद्य सामग्री बन जाएँगे। यह बचत सुन्दर वरदान बन जाएगी। 'तुम' भी रहो 'मै' भी रहूँ ।।६।।

तुम्हारे वैभव और विलास पूर्ण बगीचेसे यदि काँटे और झंखार ही बच जाएँ तो वे बिना दीवारोंकी झोंपड़ियोंके लिए घेरे बन जाएँगे। अतः अपनी समझ सन्तुलित और सच्ची रखो। 'तुम' भी रहो,'मै'भी रहूँ। ।।७।।

देशोंको हड़प करनेकी तृष्णा! जब पेटकी चिन्ता सता रही है, रक्त पातकी इच्छा! सभ्यताके युगमे! प्रकाश पूर्ण दिनमें यह अन्धेरा!! 'तुम' भी रहो, 'मै' भी रहूँ। ।।८।।

८. इन्सानु

जे हुजे ज़ाति खे हा पाणु छिपाइण जो ख़ियालु,
कीन हरगिज़ हा करे तोखे बनाइण जो ख़ियालु।

रूह तुंहिंजे खे करे नूर मां किअं हा पैदा,
जे हुजे खेसि न हा भेद बनाइण जो ख़ियालु ॥१॥

शिकिलि आईने मां तुंहिंजे थी रत्तींदड़ जी बखे,
आहे ही पाण बिना पाण पसाइण जो ख़ियालु ॥२॥

थी मुन्नवरु थे जदहिं जोति मंझां मन्श बधी,
हो तदहिं ख़ाकि में ख़ुरशीद समाइण जो ख़ियालु ॥३॥

तो में यज़दां जदहिं प्रेम भरी दिलि थे भरी,
हो तदहिं धार करे खेसि मिलाइण जो ख़ियालु ॥४॥

इश्क धारां न हले दिलि ते हुकुमत कंहिंजी,
हो न ताक़त सां को क़ुदिरत खे दबाइण जो ख़ियालु ॥५॥

तुंहिंजे रचिना ते रस्यो हुस्न खे छा ऐन कमालु,
जोड़ तुंहिंजे ते उध्यो प्रिति पचाइण जो ख़ियालु ॥६॥

बज़्म हस्तीअ खे मिली रंगति ऐं रौनक़ तोखां,
तोते थी औजि रस्यो रंग रचाइण जो ख़ियालु ॥७॥

सारी मख़लूक़ जे आख़िरमे तो इन्सान अची,
साफ़ु साबितु कयो सरताज सदाइण जो ख़ियालु ॥८॥

आहि संसारमें इन्सान! उजालो तोखां,
तोखे को आहि भला पाणु मल्हाइण जो ख़ियालु! ॥९॥

का बि आदो न अटक आहि जे 'बेवसि' न बणीं,
आहि दुनियामें अगरि धूम मचाइण जो ख़ियालु ॥१०॥

———

८. मानव

यदि परब्रह्मको अपने आपको अप्रकट रखनेका ही विचार होता, तो वह कदापि तुम्हे निर्मित करनेका विचार ही नहीं करता !

तुम्हारी आत्माको अपने प्रकाशसे वह क्यों उत्पन्न करता, यदि उसे अपना रहस्य खोलनेका विचार न होता। ॥१॥

तुम्हारे ही दर्पणसे स्रष्टाका रूप मुखरित हो रहा है, तो क्या इससे अपने आपको प्रकट करनेका उसका विचार नहीं झलकता ? ॥२॥

जब उसकी ज्योतिसे मानव बुद्धि प्रकाशित हो उठी तब सूर्यका विचार रज-कणोंमे समानेका था। ॥३॥

प्रभुने जब तुममे प्रेमपूर्ण हृदय भरा तब तुम्हें विच्छिन्न कर अपने आपमे समानेका विचार था। ॥४॥

प्रणयके सिवाय किसीका भी हृदयपर शासन नही चल सकता। इसमे शक्ति द्वारा प्रकृतिको दमन करनेका विचार न था। ॥५॥

तुम्हारे निर्माणसे सौन्दर्य पराकाष्ठापर पहुँच गया। स्रष्टाका तुम्हारी सृष्टि द्वारा ही प्रेमको परिपक्वावस्थामे पहुँचानेका विचार था ॥६॥

तुम्हारे द्वारा ही इस सृष्टिको शान-शौकत और ओजस्विता प्राप्त हुई है और तुम्हारे द्वारा ही (लीलामयकी) लीला रचनेका विचार उभर उठा ॥७॥

ऐ मानव ! सारी सृष्टिके अन्तमे तुमने उत्पन्न होकर मुकुट-मणि होनेका विचार प्रमाणित कर दिया ॥८॥

ऐ मानव ! तुमसे ही इस संसारमें आलोक उद्भासित है, भला कभी तुम्हे अपनेको सफल बनानेका विचार आया ! ॥९॥

यदि तुम्हारा विचार संसारमे धूम मचानेका है तो कोई भी बाधा तुम्हारे सामने टिक नहीं सकती, यदि तुम अपनेको 'बेवस' (लाचार) न बना दो ॥१०॥

———

९. पोढ़्यतु

थो कणे मां केच आणे तुंहिजो साज़ो हथु शरीफ़ु,
दस्तकारीअ में दिलावरु आहि जो हुनिरी हरीफ़ु
बर्कती बाज़ुनि सां तुंहिजे ज़ोरु थो पाए ज़ईफ़ु,
थो पले रत ते रबी ऐं खून ते तुंहिजे खरीफ़ु,
ज़रि ज़राइत मां उपाए पाण थो बे ज़रि रहीं,
बेगिरहि बेग़रि वहीं ऐं बे समरु बे घरु रहीं ।।१।।

वाअ वाचूड़े न जोह्यो तुंहिजे लोही जानि खे,
बे दिल्यो कांइरु करण जी कीन दमु तूफ़ान खे,
नाहि सरिदियुनि खां सियान्दो तो अजबु इन्सान खे,
थो सघे लोदे न गरिम्युनि जो असरु ईमान खे
भलि पघरु टिमंदो रहे या वद फुड़ो वसंदो रहे,
मुंहुं मगरि हसंदो रहे, हुदु हाज में गसंदो रहे ।।२।।

थी पतंगु थो जानि साड़े शमइ शाहूकार ते,
खुदि रही मांदो तो आंदी मौज मूड़ीदार ते,
गुल धरे बेदिलि ते भेटा, खुशि रहीं खुदि ख़ार ते,
तोखे बेसुरितीअ रसायो आहि हालति ज़ार ते,
तुंहिजी महिनत जे शजर ते आहि पियल बेपाड़ी वलि,
ज़िंहि रख्यो तोखे सुकलु ऐं पाण खे साओ अवलि ।।३।।

आउ ! दिसु जोतिष नज़र सां खोलि हिन हथजी तरी,
ज़िंहि सवा संसारमें कंहिजी न अजताई सरी,
किअं न आहे बख़्त जे बहितरि निशाननि सां भरी,
माल, धन, इज़त ते आहे सोभ सोभ उनजी सरसरी,
उथु, उथी जाणू नज़रि सां धरि नसीबनि ते नज़र,
जा बजा, पूरब-पछम में आहि पोढ़्यतजी पचर ।।४।।

९. श्रमिक

ओ मज़दूर ! तुम्हारा यह पवित्र दायाँ हाथ मनों कनस पैदा करता है। हे वीर ! तुम्हारी इन प्रसादपूर्ण भुजाओंसे ही बलहीन, शक्ति प्राप्त करता है, तुम्हारे ही रक्तसे रबी खरीफका पोषण होता है। इस खेती-बारीसे खूब धन उत्पन्न करनेपर भी तुम निर्धन ही रहते हो। तुम बेगारमे पिसते हो और निराश्रित होकर बेघर बने हो। ॥१॥

तुम्हारे इस लौह-कार्यको वायु तथा बवण्डर विचलित नहीं कर सके। तुम्हें कायर और उदासीन बनानेका तूफानमे दम नही है, हे विचित्र प्राणी, शिशिर और हेमन्तकी ठिठुरन तुम्हें कम्पित नहीं कर सकती और न भीषण ग्रीष्म ही तुम्हारे विश्वासको डिगा सकता है। भले ही पसीनेसे तर क्यों न हो जाओ अथवा मूसलाधार वर्षा होती रहे, फिर भी तुम्हारा मुख हँसता ही रहता है और शरीर श्रमसे घिसता रहता है ॥२॥

पतंग बनकर साहूकार रूपी शमापर तुमने अपनेको जला डाला। स्वयं दुखी रहकर तुमने पूँजीपतिके लिए आनन्द उपजाया। तुम हृदय-हीनपर फूलोंकी भेट चढ़ाकर स्वयं काँटोंपर ही प्रसन्न रहते हो। अज्ञानने ही तुम्हे इस अन्यायपूर्ण अवस्थामें डाल दिया है। तुम्हारे परिश्रम रूपी पेड़पर सत्यानाशीकी बेलने अधिकार कर लिया है, जिसने तुम्हारा शोषण किया और स्वयं हरी-भरी बनी रही। ॥३॥

इस दाएँ हाथकी हथेली खोलकर अपनी आँखोंसे ज्योतिष देखो, जिसके बिना इस संसारमें किसीका भी निर्वाह नहीं हो सकता, किस प्रकार यह सौभाग्यपूर्ण चिह्नोंसे सुशोभित है। और देखो कि वैभव, धन और सम्मान पर उसने विजय प्राप्त कर ली है। उठो, और उठकर ज्ञान-पूर्ण दृष्टिसे अपने भाग्यपर दृष्टिपात करो। आज पूर्व और पश्चिमके प्रत्येक स्थानमें श्रमिककी ही चर्चा है। ॥४॥

नूर में तारा बुदनि था, आस्मां ! मातमु न करि,
आहि सूरिज जी सुवारी, धरि तूं ओभर ते नज़र
दरि बदरि उंदहि दिसी, कूमाइजी वेंदो कमरु,
चश्म रोशनि लाइ 'बेवसि' आहि ख़ासो ख़ुशि ख़बर,
मालिकाणे चीचिड़े में पीड़िजणु केसीं रवा ?
पंहिंजे दिलि जे भीड़ अंदरि भीड़िजणु केसीं रवा ? ॥५॥

———————

ये ग्रह और नक्षत्र प्रकाशके कारण अस्त हो रहे है। अतः ऐ आकाश ! तू शोक न कर। तू पूर्वकी ओर देख! सामनेसे सूर्यकी सवारी आ रही है। चारों ओर अँधेरा छाया हुआ देखकर कमल मुरझा जाएगा। 'बेवसि' कहते है कि प्रकाशपूर्ण आँखों वालोंके लिए यह आनन्दमय समाचार है। स्वामी अथवा मालिकोंके इस कोल्हूमें पेरा जाना कहाँ तक उचित है? अपने हृदयकी पीडासे पीड़ित होना कहाँ तक उचित है? ॥५॥

---

१०. हाइ हारी !

तुंहिंजे तस्वीर मंझां क़ोम जो कुन्याउ बखे,
तुंहिंजे फ़रियाद मां बेदादि जो वर्ताउ बखे,
तुंहिंजे बदिहाल मंझां आम जो ईजाउ बखे,
माठि तुंहिंजे मां ग़ज़बिनाकु थो ग़ोग़ाउ बखे,
जानि जिंदु पंहिंजी जफ़ाउनि में पधारे गारी,
तबि दिलावरु थी अञां दिलि न तो हारी, हारी ! ।।१।।

थी उभो ऊंधो तो रोंबनि में कई चेल्हि कुबी,
पेर पाणीअ में टुबिया, जानि पसीनें में टुबी,
ज़िंदगी तुंहिंजी ग़िलाज़त लपाटुनि में लुबी,
जिस्म खे साफ़ु करण लाइ न साबुणी सुबी,
मूज़ी मर्ज़नि में पई मौत जो सवलो थीं शिकारु,
थ्यो सक़ीमीअ जे सबबि तो में दवाउनि लइ धिकारु। ।।२।।

तो दिना पोखे घणा, पर न खंया क़ूत कणा,
जे रढ़ा न रझण जा, से चबंया सत्तु चणा,
तुंहिंजे गुंदियुनि में घिड़ण लाइ घणाई हा घणा,
मालु खाजी व्यो, रह्या बाक़ी तुहनि जा के कणा,
जंहिंजे रत साणु रबी, ख़ून सां पलिजे थो ख़रीफ़ु
हाइ ! बेकूतु रहे पाण सो हुनिरी एं हरीफ़ु। ।।३।।

पहुच तुंहिंजे खां ज़मींदारु सदा आहि परे,
वोट बेगरि जे समे यादि वदेरो थो करे,
छोत उन वक्ति संदसि तोखां सवाइ थीं न सरे,
कमु टिपाइण लइ खेयो तोखं दिलासनि सां भरे,
पंहिंजी ताक़त जो जरो माणु न हारी तोखे,
फ़र्ज़ु पालीं थो, हक़नि जाण न हारी तोखे ! ।।४।।

१०. हाय किसान !

तुम्हारे आकृतिसे तुमपर जाति द्वारा किया हुआ अन्याय झलक रहा है। तुम्हारी फरियादसे तुमपर किया हुआ अन्यायपूर्ण बर्ताव झलक रहा है। तुम्हारी दुर्दशासे आम लोगों द्वारा तुझे दिया हुआ कष्ट झलक रहा है। तुम्हारी चुप्पीसे भयानक आवाज उठ रही है। तुमने अपना तन तथा जीवन परिश्रममे पिघलाकर गला दिया तब भी हिम्मत रखकर ऐ किसान ! तुमने अपना मन नही मसोसा ॥१॥

तुमने सीधे खड़े रहकर और झुककर रोपनेमे अपनी कमर टेढ़ी कर दी। तुम्हारे पाँव पानीमे डूबे और शरीर पसीनासे तर हो गया। तुम्हारा जीवन गन्दगीकी चपतें खाता रहा। शरीरको स्वच्छ रखनेके लिए तुम्हें साबुन तक नही प्राप्त हुआ। भयानक बीमारियोंसे घिरकर तुम्हें मौतका शिकार बनना पड़ा। गरीबीके कारण तुम दवाइयोंको भी धिक्कारने लगे ॥२॥

बो-बोकर तुमने बहुतोंको अनाज दिया, लेकिन अपने पोषणके लिए तुम पूरा दाना भी सुरक्षित न रख सके। तुम्हे कठोर चने ही चबाने पड़े। तुम्हारे खलिहानोंमे घुसनेके लिए बहुत लोग थे, माल तो साफ हो गया और तुम्हारे लिए भूसी और छिलके ही बचे। जिसके रक्तसे रबी और खरीफका पोषण होता है ! अफसोस, वह परिश्रमी बिना दानेका ही रह जाता है ! ॥३॥

जमीदार तुम्हारी पहुँचसे बहुत दूर है, लेकिन वोट और बेगारके समय वह तुम्हें खूब याद करता है, क्योकि उस समय तुम्हारे बिना उसका काम नहीं चल सकता। अपना काम निकालनेके लिए वह तुम्हें तरह-तरहकी दिलासाएँ देता है। हे किसान ! तुम्हें अपनी शक्तिका किञ्चित् भी बोध नहीं है। तुम अपने कर्तव्यका पालन तो करते हो लेकिन तुम्हें अपने अधिकारोंका भान तक नहीं है ॥४॥

घोरु ऊंदहि जे बिनहि पेट में प्रकाशु वसे,
सरस्तु बट सोढ़, थी तूफ़ान जो इमकानु दसे,
दर्दु, हद पंहिंजी लंघे, रूपु शफ़ा जो थो पसे,
ख़ासि 'बेवसि' ते गझ्यो दस्तु थो कुदिरत जो रसे,
तो लइ आकास मंझां गर्जदा बादल था अचनि,
महिर जो मींहुं खंयो भर्जदा बादल था अचनि। ।।५।।

———

घोर अन्धकारके अन्तःकरणमे ही तो प्रकाश बन्द रहता है। हवाके रुक जानेपर जब सख्त गरमी पड़ती है, तो तूफानका अन्देशा रहता है। दुःख अपनी सीमापार करनेपर ही स्वास्थ्यका रूप देखता है। नितान्त बेबस अथवा निरुपायकी सहायताके लिये ही कुदरतका सहायक हाथ पहुँचता है। तुम्हारे लिए आकाशसे गरजते हुए बालक आ रहे है, दयाकी वृष्टि लिए गरजते हुए बादल आ रहे है ।।५।।

---

११. किथे इतिहादु ?

एकता जा देविता ! तुंहिजो लहां मन्दरु किथे ?
जंहिमें इतिहादी उजालो आहि सो अंदरु किथे ?
दरिबदरि थ्यो दादुला तो बिनु उमेदुनि जो जहाजु,
आस आज़ादीअ लइ आहे बैठको बंदरु किथे ? ॥१॥

व्यो मची तूफ़ानु ज़िद्दी, समुंडु छोली मारु थ्यो,
किअं मिलनि मक़्सद जा मोती, शान्ति-घरु सागरु किथे ? ॥२॥
किअं फ़सादी ख़ूनु वेंदो क़ौमियत जे क़लब मां,
नब्ज़ ते नश्तर किथे, शरियान ते खंजरु किथे ? ॥३॥
समुझ सालिह ते, तमीज़ी एं दिमाग़ी चोट ते,
थो पुजी पहुचे दंगण लइ लोभ जो अजिगरु किथे ? ॥४॥
अंध जा खोपा चढ़्या खुदि गर्ज़ चश्मनि जे मथां,
किअं भला ईंदो नज़र में "परु किथे एं घरु किथे" ? ॥५॥
अहिद शाहाणा फिरनि था मतिलबी महिवर उते,
आहि अख़्त्यारीअ जे वाकनि में वाईअ वरु किथे ? ॥६॥
जंहि मां गुज़िरी आम जो आसूदिगीअ में थ्ये गुज़रु,
दिलिनिवाज़ीअ जो जहान में सो दयालू दरु किथे ? ॥७॥
मासु चंबेबाज़ तुंहिजो था तकिनि आकास तां,
तेज़ु चुंहिबुनि मां चवनि प्या "भलि त विढ़ंदे मरु किथे ?" ॥८॥
बर्कती तासीर सुहिबत सां करे जो लोहु, ज़रि,
प्रिति जो पारसु पहणु सो कुर्ब कीम्यागरु किथे ? ॥९॥
जो मिलाए मुफ़र्दनि खे मुर्कबी मेलाप में,
सो हुबअल वतनीअ जो 'बेवसि' जज़िबो एं जोहरु किथे ? ॥१०॥

११. एकता कहाँ ?

हे ऐक्यके देव ! मै तुम्हारा मन्दिर कहाँ पाऊँ ?
वह हृदय कहाँ है जिसके अन्दर ऐक्यका प्रकाश है ?

ऐ लाडले! तुम्हारे बिना आशाओंका जहाज भटक गया है। स्वतन्त्रताके लिए आशाएँ तो उठ रही है लेकिन लंगर डालनेके लिये बन्दरगाह कहॉ है ? ।।१।।

बड़े ही जोरका तूफान उठा है समुद्रकी लहरे उछल रही हैं। लेकिन उद्देश्यके मोती कैसे प्राप्त हो सकते है क्योकि शान्तिपूर्ण सागरकहॉ है? ।।२।।

[illegible] शरीरसे यह विषाक्त रक्त कैसे दूर होगा? क्योंकि नब्ज और नाड़ियोके लिये नश्तर कहॉ है ?।।३।।

शुद्ध बुद्धि, सच्चरित्रता, और मस्तिष्ककी उदात्ततापर भी लोभ रूपी अजगर हावी हो जाता है ।।४।।

स्वार्थी ऑखोंपर अन्धकारका परदा पड़ गया है फिर भला अपना और पराया क्योंकर दृष्टि गोचर हो ! ।।५।।

स्वार्थकी धुरीपर राष्ट्रोंकी सन्धियाँ भी पलट रही है। अधिकारोंके शोर-गुलके सामने वचनकी टेक कहाँ ? ।।६।।

जिससे जनताकी आजीविकाका सुखपूर्वक निर्वाह हो सके, मन:प्रसादका संसारमें ऐसा कृपा पूर्ण द्वार कहाँ है ? ।।७।।

आकाशसे पंजेवाले तुम्हारे मांसपर ऑखे गड़ाये बैठे है। अपनी तेज चोंचोंसे कह रहे है "कही लड़ते-लड़ते भले ही मर जाओ।" ।।८।।

अपनी प्रसादपूर्ण मैत्रीके प्रभावसे जो लोहेको सोना बनाता है। प्रेमका वह पारस पत्थर और प्रेमका वह रासायनिक (कीमियागर) कहाँ है? ।।९।।

जो अनेकत्वमे एकत्व स्थापित करे, वह स्वदेश प्रेमका जज़्बा और जौहर कहाँ है? ।।१०।।

---

१२. स्त्री

जाति वहिदत खे अची जो शौक़ु थ्यो इज़िहार जो,
हुस्न हिरिखाइण लइ पहिर्यो पाण चोलो नारि जो।

पुरुषु प्रकृती ठही ज़ाती सिफ़ातीअ मां विया,
थ्यो तमाशो तुर्तु जारी दीद ऐं दीदार जो ॥१॥

थी नसीमी हीर जारी मुहिबती मुखिड़्यूं टिड़्यूं,
वस्ल जो वाशे वर्यो थ्यो सिलसिलो संसार जो ॥२॥

पल्टिजी प्यो पिर्ति जो पीपो ज़ियादह हिक तरफ़ि,
थ्यो ख़ज़ानो मनु ज़नानो इश्क़ जे इसिरार जो ॥३॥

सूंहं जो सोने मण्ये में मर्म जो मोती जड़्यो,
कमु निज़ाकतदारु थी व्यो वस्ल जे वींझार जो ॥४॥

थ्यो मुख़ालिफ़ ज़ुहिदु जारी ज़ोर जो ऐं ज़ारि जो,
मामिलो मुश्किलु मची व्यो सोभ जो ऐं हार जो ॥५॥

हिक नज़र जे चोट केर्या कोट भगिती ज्ञान जा,
ज़ोरु बम जर्मन खां ज़्यादह हुस्न जे हथियार जो ॥६॥

बदि नज़र जी बाहि भड़िकी, प्यो सत्या सागरु छुली,
हिक लहिरं सां लुड़ु लथो, थ्यो ताड बसि बदिकार जो ॥७॥

जीतिजी पुणि व्यो चितोरी कोटु जो अण जीतु हो,
पर सत्या जे कोट पद्‌मिणि खे न थ्यो विगु वार जो ॥८॥

छा मंदाईअ खे मजालि आहे छपरु अखि जो खणे,
ताबु बिजिलीअ खां ज्यादह तेज जे तलिवारि जो ॥९॥

स्त्रीअ जे गुप्तु जज़िबनिमें घणो ऊन्हो असरु,
थी कटे दिली जे सिदफ़ मां मोती नितु वीचार जो ॥१०॥

१२. स्त्री

जब ब्रह्मको अपने आपको प्रकट करनेकी लालसा उत्पन्न हुई, तब सौन्दर्य से लुभानेके के लिए उसने स्त्री वेश धारण किया।

निराकार और साकारके सम्मिलनसे पुरुष और प्रकृतिका प्रादुर्भाव हुआ, जिससे शीघ्र ही द्रष्टा और दृश्यका समारम्भ आरम्भ हो गया ।।१।।

प्राची से मलयानिल के बहने से प्रेमिल मुकुल मुकुलित हो उठे। संयोगकी विजय हुई और संसारका समारम्भ हुआ ।।२।।

प्रेम का पलड़ा एक ओर विशेष रूप से झुका और नारी हृदय प्रेम के चमत्कार की निधि बन गया ।।३।।

सौन्दर्य के स्वर्णाभूषण में लज्जारूपी मौक्तिक विजड़ित हुआ और संयोगके मौक्ति-वेधनका कार्य विशेष रूपसे निखर उठा ।।४।।

बल और अन्यायका विरोधी संघर्ष आरम्भ हो गया, जिससे विजय और पराजयका व्यापार कठोर हो उठा ।।५।।

दृष्टिके एक ही आघातसे भक्ति और ज्ञान के प्राचीर का पतन हुआ। सौन्दर्य के अस्त्र की शक्ति जर्मन-बम से भी शक्तिशालिनी सिद्ध हुई ।।६।।

जब पाप-दृष्टि की आग भड़की तो सतीत्वका सागर आलोड़ित हो उठा। एक ही लहरसे शोर शान्त हो गया और शान्त हो गई पापीकी ज्वाला भी ।।७।।

यद्यपि चित्तौरका अजेय दुर्ग विजित हो गया फिर भी पद्मिनी के सतीत्व के दुर्गका बाल तक भी बाँका न हुआ ।।८।।

पाप पूर्ण वासनाकी हस्ती ही क्या कि जो सतीपर आँख तक उठा सके। सती के तेज रूपी खड्ग का प्रकाश बिजली से भी अधिक है ।।९।।

नारी की गुप्त भावनाएँ बड़ी ओजस्विनी होती हैं। वह अपने हृदय-शुक्तिसे नित्य नए मोती उपजाती है ।।१०।।

देह जा रोशनु दिया थी पाण मां पिरिघटु करे,
थी अंधारो गुमु करे अज्ञान जे अंधिकार जो ।।११।।

प्रेम-जल ऊजल मथां निर्मलु कंवल जो गुलु रहे,
दिलि भिनल मां वासु दिये नितु हुब्ब जे हुबिकार जो ।।१२।।

गर्भवन्ती गर्भमें धारे पतीअ जी मूरिती,
दिसु पिता सां थो मिले अकसिरि मुंहाडो बार जो ।।१३।।

क़ुर्ब सां क़ुर्बान गहमें जानि थी घोर्यो घुमे,
जस भर्यो उनजो जीअणु 'बेवसि' सदा उपकार जो ।।१४।।

———

वह अपने भीतरसे संसारके प्रकाशमान दीप-स्तम्भ प्रकट करती है और अज्ञानके अन्धकारका विनाश करती है ।।११।।

उज्वल प्रेम-जलके ऊपर निर्मल कमलका वास रहता है।उसका सहानुभूतिपूर्ण कोमल हृदय प्रेमकी सुगन्धसे संसारको सुवासित करता है ।।१२।।

गर्भावस्थामे, गर्भमे वह पतिकी ही प्रेमपूर्ण प्रतिमा धारण करती है, जिससे प्रायः पुत्रका रूप पिताके सदृश ही हुआ करता है ।।१३।।

वह प्रेमकी बलि वेदीपर अपने आपको प्रेमपूर्वक न्यौछावर करती हुई विचरण करती है 'बेवसि' कहते हैं कि उसका नित्य उपकारपूर्ण जीवन यशस्वी है ।।१४।।

———————

१३. शाहूकारु

लालु थ्यो तुंहिजो दुशालो, कंहिजे लोहू छाणि मां,
ख़ूनु दिलि कंहिजो बखे थो, तुंहिजे गिल गाढ़ाणि मां,
आहि तरि दामाने अशिरत कंहिजे अखि आलाणि मां,
साज़ु राहत जो वजे थो कंहिजे तन्तुनि ताण मां,
कंहि कयो तो नरमखे खे मुफ्त खाऊ मालिदारु ?
आहि सा ग़ाफ़िल ग़रीबी, शर्म शामत जो शिकारु ।।१।।

किअं न रत-चूसे जौर खे लोकु प्यो साईं सदे,
ख़ूनु खेंच जो करे दरिदी दिल्यूं ख़ाली छदे,
ख़ून जे सुर्ख़ीअ सां चुनु हीण्युनि हद्रियुनि वारो गदे,
शीश महलूं शहिर जूं थो रिश्वती राजो अदे,
आहि पत्थर दिलि जो शाहिदु-फ़र्दु पत्थरु जाइ जो,
सोज़ु सुर सुर में समायलु सर्दु सुर जे वाअ जो ।।२।।

तमअ हड़ हड़िपू सबबि, कंगालु कियुइ एं क़र्ज़िदारु
तुंहिजे मसुवाड़ी मुहिबत, थे उपाया बेदु आर,
फाहिशी अशिरत जे आदत सां वधायुइ हर विकार,
तुंहिजे टहिकनि ते हज़ारें चश्म आहिनि अश्क बार,
जिअं वध्यो धनु, मालु, रुतिबो शानु शाहूकार जो,
तिअं वध्यो दुनिया में बाइस ज़ार जे आज़ार जो ।।३।।

फूल फल सां छुलिकंदड़ दिसु पृथ्वी हीअ पेट पाल,
जिति बणे खखिड़ी, खजी, उति खोटि खे कहिड़ी मजाल,
तोखांई शायदि उथ्यो मुश्किल—गुज़ारे जो सुवाल,
तुंहिजे ख़ुदि गर्ज़ीअ कई जीवति जीअण एवज़ि जंजाल,
लोड़ खां वधि खोड़ खे सोढ़ो कयो तो सोढ़ सां,
सिर सटियइ सहसें सक़ीमी, घुरिज लोही लोढ़ि सां ।।४।।

१३. धनवान

तुम्हारा यह लाल दुपट्टा किसके खूनसे सुन्दर बना है? तुम्हारे लाल गालोंकी लालीसे किसके हृदयका खून प्रकट हो रहा है? किसकी आँखोंकी आर्द्रतासे तुम्हारे इस वैभवका पल्ला तर है? किसकी ताँतोंके तननेसे तुम्हारा यह आनन्दपूर्ण साज बज रहा है? ऐ मुफ्तखोर! तुम जैसे नर मक्खो (शहद) को किसने वैभवशाली बनाया? वह है अबोध विपन्नता, जो लज्जा और विपत्तिका शिकार बनी हुई है ।।१।।

आश्चर्य है कि इस रक्त चूसनेवाली जोंकको 'स्वामी' के नामसे सम्बोधित किया जाता है, यह वह है जो दुःखपूर्ण हृदयोंका खून चूसकर खाली कर देता है। यह रिश्वत रूपी राज, खूनकी लालीसे कमजोर हड्डियोंका चूना मिलाकर नगरके नए-नए शीश महल निर्मित कर रहा है। उन्हीं बने हुए प्रासादोंके पत्थर उसके पाषाण हृदय होनेकी साक्षी दे रहे हैं और साक्षी दे रही हैं प्रत्येक स्वरमे समायी हुई ठण्डी आहें ।।२।।

सर्वहारा वृत्तिके कारण तुमने गरीबोंको कंगाल और ऋणी बना दिया। तुम्हारी इस मकान-किराये की मुहब्बतने कइयोंको बेघर और निराश्रित बना दिया। इन्द्रिय भोगोंके सुख लेनेकी आदतसे तुमने कई विकार बढ़ा दिए, तुम्हारे इन ठहाकोंके कारण हजारों आँखें अश्रु पूर्ण हैं, ज्यों-ज्यों धनवानका धन, माल, पद, और शान-शौकत आदि बढ़े त्यों-त्यों संसारमे वे अन्याय पूर्ण कष्टोंके कारण बन गए ।।३।।

फलों-फूलोंसे लदी, उदर पूर्ति करानेवाली इस पृथ्वीको देखो, जहाँ एक बीजसे खजूरका पेड़ पैदा हो जाता है, वहाँ कमी की क्या मज़ाल! तुम्हारे कारण ही शायद आजीविकाकी समस्या कठिन हो गई है। तुम्हारे ही स्वार्थने जीवन-निर्वाह कठोर कर दिया है। आवश्यकतासे अधिक संग्रहकी इच्छासे तुमने लोगोंको तंग कर दिया है और आवश्यकता रूपी लोहेकी छड़, तुमने हजारों गरीबोंके सर पर दे मारी है ।।४।।

कर्मयोगी थी न तो ख़ुदि कर्म जी क़ुदिरत दिठी,
थियल थकावट खां न वेसाहीं वठी, फरहत दिठी,
किअं बसर बुख में मिठा माणे न सा लज़्ज़त दिठी,
तंदुरुस्तीअ जे न सालिमु निंड जी नइमत दिठी,
जे रसे मज़दूरु 'बेवसि' कंहिं वदेरे राज ते,
हूंद पहियें पूरि उतराखंड ते तोखे छदे ॥५॥

———

कर्मयोगी बनकर तुमने कभी कर्मकी कृपा ही न देखी और परिश्रमके कारण हुई थकावटसे आराम लेकर, तुमने कभी आनन्द ही नहीं लिया। किस प्रकार भूखमे प्याज भी मीठी लगती है इसका रसास्वाद ही नहीं लिया और न कभी स्वास्थ्यकी गहरी निद्राका मजा ही चखा ॥५॥

१४. हमदर्दु गोल्हो

अचानक उथी दिलि अंदरि आरिज़ू
"न घार्यां घंघर में थियां रूबरू"
कयमि चाह मां चारिसू जुस्तजू,
लभे राहिबरु या कि पूरनु गुरू
सची राह् रोशनु सघे जो सले,
हुज़ूरीअ में मूंखे वठी जो हले ॥१॥

रुलाए रख्यो शौक़े-दिलि दरिबदरि,
रहे थी अंदर में इहाई पचर,
न आई किथां भी खजी खुशि ख़बर,
निहार्युमि घणो की न आयो नज़र,
बुधण लइ घणो मूं कया कन खड़ा,
मगरि कीहं बि सदजी न पहुती सदा ॥२॥

जटाधारी जोगी अचानकि गदियो,
इशारे सां ओरे सिघो जंहिं सदियो,
चयाईं बिना योग चारो न ब्यो,
सिखणु योगु तंहिते ज़रूरी पियो,
घणा साल घारे दिठमि योग में,
मगरि मनु हो साग्यो विषय भोगमें ॥३॥

वरी ब्रह्मज्ञानी मिली सन्तु ब्यो,
चयाई : "बिना ज्ञान रस्तो न ब्यो",
उन्हीअ खां बि सतिज्ञानु सिखिणो पियो,
रहणु ज्ञान में रातिदींहां थियो,
उन्हीअ राहमे पुणि न राहत मिली,
लगी कंध में का कथा जी किली ॥४॥

१४. सहानुभूतिपूर्ण अश्रु-विन्दु

अकस्मात् मेरे हृदयमें यह इच्छा प्रकट हुई :—"विशेष असमंजसमें न पड़कर प्रियतमके सम्मुख जाऊँ ।" अतः बड़ी उत्कण्ठासे मैंने चारों ओर खोज की कि मुझे कोई पथ प्रदर्शक अथवा सच्चा गुरु मिल जाए, जो मुझे प्रकाश पूर्ण सत्य मार्ग दिखला सके और मुझे मेरे प्रियतमके चरणोंमे उपस्थित कर सके ।।१।।

हृदयकी मेरी इस उत्कण्ठाने मुझे दरबदर कर दिया । हृदयमें यही लालसा बनी हुई है । मैंने बहुत ढूंढ़ा, देखा, लेकिन कुछ दिखाई न पड़ा और कहींसे भी यह सुसमाचार प्राप्त नहीं हुआ । सुननेके लिए मैंने अपने कानोंको खूब सतर्क किया, लेकिन मेरे बुलानेपर भी कहींसे आवाज नही आई ।।२।।

अचानक एक जटाधारी साधु मिल गया, जिसने इशारेसे मुझे अपनी ओर बुलाया और कहा कि योगके सिवा कोई दूसरा मार्ग नहीं है । अतः योग सीखना मेरे लिए आवश्यक हो गया । बहुत वर्षों तक मैंने योगकी साधनाएँ की, लेकिन मन फिर भी विषयोंमें ही रमा रहा ।।३।।

फिर कहींसे एक ब्रह्म-ज्ञानी सन्त मिल गया । उसने कहा—"ज्ञानके सिवा अन्य मार्ग नही है ।" उससे भी मैंने सद्ज्ञानकी दीक्षा ली और रात-दिन ज्ञान-चर्चामे ही बिताने लगा । सत्कथाका उपदेश पाकर भी मुझे उस मार्गसे आनन्द प्राप्त नहीं हुआ ।।४।।

वरी कर्मकाण्डी वियो को मिली,
चयाईं: "क्रिया शुद्धि खपे थी निली,
तकड़ि मां वियुसि तीर्थनि ते टिली,
कयुमि दानु, इश्नानु, जपु तपु दिली,
वर्यो कीन विर्तनि ऐं संताप मां,
छुटी कीन जिंदु, हाइ विर्लाप मां ! ॥५॥

वरी शौक मां व्युसि भगत वटि हली,
चयाईं त: "भगिती सभिनिमें भली'',
वर्ह्यो पोइ त भगितीअ में दिलि थे जली,
मगरि राह पूरी न भगितीअ सली,
करे दांहं दर्दी चयुमि: "छा कयां ?"
धज़ा हीअ वञी कंहिंजे दर ते धर्यां ? ॥६॥

अचानक मूं हिकु सूर-सुदिको बुधो,
बुधण सां हमिदर्दु गोढ़ो गर्यो,
उहो आब जो हो रुगो हिकु फुड़ो
समायलु फुड़े में सजो समुंडु हो !
उन्हीअ समुंडमें "पाणु" मुंहिंजो बदो !
गगन में थियो गुप्तु गूंदर-गुदो ! ॥७॥

लंघे दर्दु हद खां त थे ख़ुदि दवा,
जुजो कुलमें थी फ़ना, थिये बक़ा,
मिले आउं, तो में त थे इन्तहा,
रहे थी न मां ऐं न मंशा मुदआ,
वञे आस 'बेवसि' निपटु नासु थी,
ख़ुदी बेख़ुदीअ में करे वासु थी ॥८॥

फिर एक कर्मकाण्डीसे परिचय हुआ, उसने कहा—"केवल शुद्ध क्रिया अथवा कर्मकाण्डकी आवश्यकता है।" शीघ्र ही मैं तीर्थ यात्राके लिए निकल पड़ा। वहाँ पहुँच कर जप, तप, ध्यान, स्नान, तथा प्रेम-पूर्वक दान भी किया, लेकिन व्रतों और प्रायश्चित्तसे भी कुछ सिद्ध न हुआ और संसारकी हाय-हायसे जान नही छूटी ।।५।।

फिर बड़े ही प्रेमसे एक भक्तके पास गया। उसने कहा—"भक्ति ही सबसे उत्तम है।" वर्षों भक्तिमे अपने हृदयको रमाता रहा, लेकिन भक्तिने भी पूरा मार्ग-दर्शन नही किया, तब दुःखपूर्ण निःश्वास लेकर कहना पड़ा "अब क्या करूँ?" यह ध्वजा मै किसके दरवाजेपर जाकर गाड़ूँ ।।६।।

अचानक मैने किसीकी कष्ट पूर्ण कराह सुनी-सुनते ही एक सहानुभूति-पूर्ण अश्रु विन्दु झलक आया। यद्यपि वह एक पानीकी ही बूंद थी, लेकिन उसमे समाया हुआ था सारा समुद्र! उस समुद्रमें मेरा 'अहम्' डूब गया और यह दुःख-पूर्ण गुड़िया गगनमे समा गई ।।७।।

जब दुःख सीमाको पार कर जाता है तो वही औषधि बन जाता है। व्यष्टि समष्टिमें समा (फना) कर ही शाश्वत बनता है। जब 'मैं', 'तू' में समा जाता है तब निःसीमता आ जाती है, तब ममत्व और वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं और आशाका निराकरण होकर 'अहम्', 'ब्रह्म' में लीन हो जाता है ।।८।।

———

१५. आज़ादिगी

बाबरी कंडनि मंझां तुंहिंजो गुज़रु–आज़ादिगी !
तो वसायो सस्तु सो फ़ौलादु घरु–आज़ादिगी ।
जंहिंजे टोड़ण लइ खपे जांठो जिगिरु–आज़ादिगी!
कंहिं मुसीबत जो न थिये जंहिंते असरु–आज़ादिगी !
मस्तु थी तुंहिंजे मथां इन्सानु थ्ये थो बेडपो,
जो बणी परिवानो दे थो तेजु आतशि में टपो ।।१।।

शख़्सियत जी गुप्तु शक्ती तो बिना निकिरे नथी,
फाटु खाई ज़िंदगी, इन्सान जी निसिरे नथी,
रोशिनाई रूहजी ऊंदहि मंझां उभिरे नथी,
कौमियत नाकारिगरु थी कंहिं तरहि सुधिरे नथी
पाण ते भाड़णु ऐ खुद्दारीअ जो थो बुणु नासु थिये,
आत्मिक उन्नतीअ संदो, हिक ख़ासि गुणु थो नासु थिये ।।२।।

दमु दब्यलु, निर्घटु घुटचलु, तो बिनु बकर बसाट आहि
राजिधानी रमिज़ सां इन्साफ़ जी जड़ काटि आहि,
दाद सां बे दाद जी वेझी अज़ाज़त वाट आहि,
टिमिकंदड़, फड़ि फड़ि कंदड़, बे जोति जीवत लाट आहि,
दाब खां दबिजी वञे थो, दर्दु दिलि रंजूर में,
जख़्मु दिलि ज़ाहिरु थिये थो, नेठि सो नासूर में ।।३।।

दूद मां दुखंदी उथे थी बाहि सां भड़िको हणी,
जा जलाए जानि खे जज़्बात जूं चिणिगूं हणी,
जिअं मुख़ालिफ़ु वाउ छुटिके, तिअं करे तेज़ी घणी,
कीन ठापुर थिये, वसे जेसीं न रहिमत जी कणी,
लाज़िमी नातो रहे हिन बाहि सां बर्साति जो,
जिअं अंधारीअ सां तइलकु आ सहाईअ राति जो ।।४।।

१५. स्वतन्त्रता

हे स्वतन्त्रते ! बबूलके काँटोंमेंसे होकर तुम्हारा मार्ग गया है। हे स्वतन्त्रते ! तुमने वज्रका घर बसाया है, जिसको तोड़नेके लिए मजबूत हृदय चाहिए, जिसपर किसीका भी प्रभाव न हो सके। मनुष्य तुम्हारे ऊपर मुग्ध होकर निर्भय बन जाता है, और पतंग बनकर तीव्र ज्वालामें कूद पड़ता है ॥१॥

तुम्हारे बिना व्यक्तित्वकी गुप्त शक्ति प्रकटित नहीं होती, मानव जीवन प्रस्फुटित होकर निःसृत नहीं होता, अँधेरेसे निकलकर आत्मिक ज्योति प्रज्वलित नही होती, और तुम्हारे बिना राष्ट्रीयता असफल होकर सुधरती नहीं। तुम्हारे बिना स्वावलम्बनका बीज ही नष्ट हो जाता है और आत्मिक उन्नतिका गुण विशेष भी नष्ट हो जाता है ॥२॥

तुम्हारे बिना बकरेकी तरह दम और गला घुटता रहता है तथा राजनैतिक चतुरताके कारण न्यायकी जड़ ही कट जाती है। तुम्हारे बिना न्यायके साथ अन्यायका सम्बन्ध निकट हो जाता है और तुम्हारे बिना जीवन टिमटिमाती और फड़फड़ाती लौ के समान है। दमनसे पीड़ित होकर हृदयकी पीड़ा दब जाती है और वह हृदयका घाव एक दिन नासूरके रूपमें प्रकट होता है ॥३॥

जब स्वतन्त्रताकी अग्नि बड़े वेगसे भभक उठती है तो भावनाओंकी चिनगारियोंसे शरीरको झुलस देती है। ज्यों-ज्यों विरोधी वायु चलती है त्यों-त्यों वह तेज जलने लगती है। जब तक कृपा-वृष्टि नहीं होती तब तक वह (अग्नि) शान्त नहीं होती। इस अग्निसे बारिशका सम्बन्ध उचित ही रहता है, जिस प्रकार अन्धकारसे चन्द्रिकापूर्ण रात्रिका ॥४॥

गोड़ि माता में मिल्यल दातारजी जा दाति आहि,
ऐं ज़न्म ते जंहिजे लइ हक़िदार इन्सान जाति आहि,
जंहिखां वधि संसारमें सुन्दरु न का सोग़ाति आहि,
तंहिखे नितु रोके रखणु 'बेवसि' न कंहिजो बाति आहि
अर्श वारा फ़र्श ते ईंदा मदद मुखिफ़ी खणी,
दर्द वारीअ दांहं ते ख़ुदि दादु आणींदो धणी ॥५॥

माताकी गोदसे ही जो वरदान प्रभु द्वारा प्राप्त है और जो मनुष्यका जन्म सिद्ध अधिकार है, जिससे बढ़कर संसारमें और कोई दूसरा उपहार नहीं, उसको सदाके लिए रोक रखना किसीके वशकी बात नहीं है अर्शवाले (स्वर्गके) देवता गुह्य सहायता लेकर फर्श (पृथ्वी) पर पहुँचेंगे, और दुःख-पूर्ण आहपर स्वयं भगवान न्याय बरसाएँगे ।।५।।

१६. पूजा मन्दरु

मुंहिंजो मन्दरु बि उते दर्द संदो जिति वेरो,
दर्दु जंहि जाइ फिरे, मुंहिंजो उतेई फेरो,
छिर्कु मारे मां मिठीअ निंड मां अध राति उथां,
डोरी उति जल्दु पुजां दर्द जो जंहि जाइ पेरो। ॥१॥

जे ह्री हृद मासु बि कमि आम जे ख़िज़िमतमें अचे,
छोन कोरे एं कपे मास दियां चौफेरो। ॥२॥

सोज़ जे आह ततल खां जा जलण दिलि न लगे,
थ्यो शर्फ़ु उनजो पहिण खां न ज़रो सरिसेरो। ॥३॥

पाणु आकाशमें शेवा जे उदायां अहिड़ो,
मिसिलि अनका न लभे मुंहिंजो किथे आखेरो। ॥४॥

तबइ हमिदर्द जो एदो त कुशांदो पिड़ु थिये
जंहिजो हरिजाइ थिए मर्कज़ु, न मगरि किथि घेरो ॥५॥

सादिगी साणु, सचाईअ सां ए 'बेवसि' चिमिके।
दिलि कंवलु कंहिं बि मंदाईअ सां न थिए शल मेरो। ॥६॥

———

१६. पूजा-मन्दिर

मेरा मन्दिर भी वहीं है जहाँ पीड़ाका निवास है। जहाँ-जहाँ दुःख विद्यमान है, वहाँ-वहाँ मैं विचरता हूँ ।

अर्द्ध रात्रिको अचानक मीठी नीदसे जगकर दौड़कर मै वहाँ पहुँच जाऊँ, जहाँ पीड़ाने अपने पाँव जमाए है ।।१।।

यदि यह मेरा मांस और अस्थियाँ जनताकी सेवाके काम आएँ तो क्यों न मै उन्हे काटकर उनपर न्यौछावर कर दूँ ! ।।२।।

दुःखपूर्ण, सन्तप्त कराहसे जो हृदय जल नही उठता, उसमें और पत्थरमें किचित् मात्र भी अन्तर नही है ।।३।।

मैं सेवाके आकाशमे इतनी ऊँची उड़ान लूँ कि 'अनक़ा' (पक्षी विशेष जो पृथ्वीपर नही बैठता ।) की तरह मेरा कही घोंसला ही न मिले ।।४।।

सहानुभूतिपूर्ण हृदयका इतना विशाल क्षेत्र बन जाए कि उसका केन्द्र सर्वत्र हो और आधिकारिकता कही न हो ।।५।।

ऐ 'बेवसि', सादगी, सच्चाईसे चमक उठ, जिससे हृदय-कमल किसी भी बुरी भावनासे मलिन न हो ।।६।।

---

१७. ग़रीबनि जी झूपिड़ी

जा आहि जाइदाद न वर्से वबाला खां,
थींदी न जेरिबारि जा गिरिवी अजे ख़याल खां,
ओनो न जंहिंखे आहिको जोखे जंजाल खां,
हल्की रहे जा हिंयांअ ते सवली संभाल खां,
जंहिं में ग़रूरे ज़रि न सरासरि सघे घिड़ी,
अला ! झुरे म शाल ग़रीबनि जी झूपिड़ी ।।१।।

जा वंउं वञे थी चीज़ कींहं नाजिकु नफ़ीस खां,
आजी रहे जा ऊचु-गुज़ारे जे रस्युनि खां,
पुणि थी पनाहमें रहे-हासिद हरीस खां
धारे न ख़ासि ख़ौफ़ु को ख़ूनी खवीस खां,
बे कुर्फ़ ऐं कड़े रहे सोघी संदूकिड़ी,
अला ! झुरे म शाल ग़रीबनि जी झूपिड़ी ।।२।।

छांगे छना अदियाऊं जो लामुनि लखनि मंझां,
सादो अझो सिटचाऊं पुराणनि पखनि मंझां,
काढो कढचाऊ कड़िब जे काननि कखनि मंझां,
पोढ़ियो पिटचाऊं पाण ऐं सरितनि सखनि मंझां
मुफ़्ती मदद ते आया मची मुड़िस थी मिड़ी,
अला ! झुरे म शाल ग़रीबनि जी झूपिड़ी ।।३।।

जंहिंते न नक़्श साज़ खे को नाज़ु थो रहे,
राजो, डखणु, न जंहिंते को लोहारु थो वहे,
चूने, पथर या सिर जो न सिरि बारु जा सहे,
'महिसूलु जाइ' गाह जे हेठां न जा गहे,
मसुवाड़ बे मुहारजी आहे न जा पिड़ी
अला ! झुरे म शाल ग़रीबनि जी झूपिड़ी ।।४।।

१७. गरीबोंकी झोपड़ी

जो जायदाद अथवा किसीकी बपौती होनेसे रहित है, जो गिरवी भी नही रखी जा सकती, जो किसी अनिष्टकी आशंकासे भी मुक्त है, जो रक्षाके विचारसे हमारे हृदयके लिए भारस्वरूप नहीं है और जिसमें धन-वैभवका गर्व भी प्रविष्ट नहीं हो सकता; हे प्रभु! ऐसी गरीबोंकी झोपड़ीको आँच तक न लगे ।।१।।

जो कोमल और मृदुल वस्तुओंसे दूर भागती है, जो वैभव-पूर्ण आजीविकाके प्रलोभनोंसे मुक्त है, जो ईर्ष्या और द्वेषसे रहित है, जिसे किसी खूनी और दुराचारीका भय नही और जो ताले आदिसे रहित होनेपर भी सुरक्षित है; हे प्रभु! ऐसी गरीबोंकी झोपड़ीको आँच तक न लगे ।।२।।

छोटी-छोटी टहनियोंको काटकर छोटा-सा घर बनाया गया है, घास-फूस और तिनकों द्वारा साधारण आश्रम बनाया गया है, जिसके निर्माणमे स्वयं उन्होंने और उनके मित्रोंने परिश्रम किया है और बिना कोई मूल्य लिए मित्रोंने दौड़-दौड़कर सहायता की है; हे प्रभु! ऐसी गरीबोंकी झोपड़ीको आँच तक न लगे ।।३।।

जिसपर न तो नक़्श साज़ ही इतराता है और न राज, बढ़ई अथवा लुहार ही जिसपर परिश्रम करता है, पत्थर, ईट अथवा चूनेका भार जो सिरपर नहीं उठाती और जो 'गृह-कर' (House Tax) के भारसे पीड़ित नही है, जो बेमुरव्वत किरायेदारके किरायेसे दबी हुई नहीं है; हे प्रभु! ऐसी गरीबोंकी झोपड़ीको आँच तक न लगे ।।४।।

सिजु चंडु वाझ थो विझे जंहिंजे विथ्युनि मंझां,
तिरिक्यो अचनि था तिरिविरा तारनि कत्युनि मंझां,
भुणिका कंदी भजे हवा जंहिंजे भित्युनि मंझां,
छिणिकारु मींहुं थो करे छुटिकी छित्युनि मंझां,
क़ुदिरत संदी कमाल, सिहत लाइ सूखिड़ी,
अला ! झुरे म शाल ग़रीबनि जी झूपिड़ी ।।५।।

जंहिं में मज़ो मचे मिठे ढोढे जुआरि ते,
सादो गुज़रु विझे न तबीबनि तंवार ते,
पोढ़्यो विझे थो वाधि वदेरी ज़मार ते,
ग़ालिबु पवे न हिर्स ख़ुशीअ जे ख़ुमार ते,
बेवसि जिते जलाए न चिन्ता जी चूचिड़ी,
अला ! झुरे म शाल ग़रिबनि जी झूपिड़ी ।।६।।

———————

जिसके विवरोंसे सूर्य और चन्द्रमा झाँकते हैं और ग्रह नक्षत्रोंकी किरणें फिसलकर भीतर आती हैं, जिसकी दीवारोंसे वायु सनसनाती हुई दौड़ती है, वर्षा जिसकी छतोंसे घुसकर छिड़काव करती है, जो स्वास्थ्यके लिए सुन्दर भेट है; हे प्रभु ! गरीबोंकी ऐसी झोपड़ीको आँच तक न लगे ।।५।।

जिसमें ज्वार अथवा बाजरेकी स्वादिष्ट रोटीमें ही आनन्द माना जाता है और जिसमे सादा जीवन व्यतीत करनेके कारण किसी वैद्य, हकीमकी जरूरत नहीं पड़ती। परिश्रम उनको दीर्घायु बना देता है। उनकी आनन्दोन्मत्ततापर तृष्णा अधिकार नही करती, जहाँ चिन्ताकी अग्नि मनुष्यको नहीं जलाती; हे प्रभु ! ऐसी गरीबोंकी झोपड़ीको आँच तक न लगे ।।६।।

---

१८. नवाई

तुंहिजी दुनिया में नवाईअ जो सदा आहे जशनु,
जंहिजे लटिके ते रहे मौजमें हरि दिलि थी मधनु,
साफ़ु लवली थी गुज़र लाइ लगे राह कठनु,
थ्यो जदाईअ ऐं जफ़ा सां बि, जियण लाई जतनु,
अहिड़ी दुनिया खां जिते मौत जो मारू थो वजे,
जे नवाई न हुजे, हूंद हजी हरि को भजे ।।१।।

हुस्न जो आहीं ज़माने में तूं जबिरो हथियारु,
तुंहिजे हस्तीअ ते रहे सूंहं जे हस्तीअ जो मदारु,
रूपजे राग अग्यां आहीं सुरीली तू सतार,
हर निज़ारे जी नज़र नूरे नवाईअ रे निकारु,
जे न हरि शै ते हणी छाप नवाई पंहिजी,
हुस्न जोखे में दिसे हूंद वदाई पंहिजी ।।२।।

थो सचाईअ ते नवाईअ जो जर्दांहि रंगु चढ़े,
सोन मुंडीअ में तर्दांहि गोया को हीरो थो जड़े,
आदि हुनुरु सो जो नमूने में नओं घाटु घड़े,
नौ ज़िबानीअ में, मगरि पर्त पुराई पढ़े,
प्यो पुराणप ते नवाईअ जो जर्दांहि वेसु वगो,
गरिचे झूनो हो गुदो, ख़ूबु सो महिबूबु लगो ।।३।।

हेचि अज आहि उहो काल्ह हुई अबिरत जंहिखे,
इल्मु हो काल्ह, चवनि अज था जहालत जंहिखे,
ऐबु शायदि थ्ये सुभां, अज थी निज़ाकत जंहिखे,
सा किथे चीज़, न तब्दील जी आदत जंहिखे,
गरिचे ख़ुदि ज़ाति हक़ीक़ीअ में फेरो थो अचे,
फ़र्क़ु तबि रूप सफ़ाईअ में झझेरो थो अचे ।।४।।

१८. नवीनता

तुम्हारे संसारमें सदा नवीनताका समारोह छाया हुआ है, जिसके लालित्यसे प्रत्येक हृदय आनन्दमे मग्न रहता है। इस संसारमें शुद्ध और सरलतापूर्वक जीवन-निर्वाह कठिन हो गया है। जिसमें जीनेके लिए कठोरता पूर्ण यत्न किये जा रहे है, जहाँ प्रति क्षण मृत्युका मारू बाजा बज रहा है, ऐसे संसारमे यदि नवीनता न होती तो प्रत्येक व्यक्ति दुखी हो जाता ॥१॥

संसारमें सौन्दर्यका तू ही ज़बरदस्त शस्त्र है। तुम्हारे अस्तित्वपर ही सौन्दर्यका अस्तित्व अवलम्वित है। रूप और रागके आगे तुम ही सुरीली वीणा हो, क्योंकि प्रत्येक दृश्यकी सुन्दरता नवीनताके प्रकाशके सिवा निकम्मी है। ओ नवीनते! यदि तुम प्रत्येक वस्तुपर अपनी छाप नही लगाती, तो सौन्दर्य अपने महत्वको भी विपत्तिमें पड़ा हुआ देखता ॥२॥

जब सत्यपर नवीनताका रग चढ़ता है, उस समय मानो स्वर्ण मुद्रामें कोई हीरा जड़ देता है। कला वही है जो नमूनेमें नई गठन गढ़ दे, लेकिन नवीन वाणीमे भी प्राचीनताका पाठ पढ़ाए। प्राचीनतापर जब नवीनताका आवरण चढ़ता है, तब वह गुड़िया पुरानी होनेपर भी बड़ी प्यारी लगती है ॥३॥

आज वही निस्सार है, जिसपर कल आश्चर्य प्रकट किया जा रहा था! जो कल तक ज्ञान समझा जाता था, आज वही अज्ञान माना जा रहा है, कल शायद वही दोष माना जाए, आज जिसे सुकुमारता प्राप्त है। वह वस्तु ही कहाँ है, जिसमें परिवर्तनशीलता न हो? यद्यपि स्वयं ज़ात हक़ीक़ी (ब्रह्म) मे कोई परिवर्तन नही होता, फिर भी सिफ़ाती (साकार) अवस्थामें उसके रूपमें बड़ा परिवर्तन हो जाता है ॥४॥

दींहुं थो रोजु दिए पिरिह सां पैग़ामु अजीमु,
"मां नवाईअ खां नओं आह्यां, क़दामत खां क़दीमु,
रमिज़ मुंहिंजी न परूड़े त न आहे सो हकीमु,
मूं सां गद जो न हले तंहिंजी थी हालति थ्ये सक़ीमु,"
थी हुनिरिमंदु नवाईअ जे न फेरे सां फिरे,
तंहिंजी तक़्दीर चढ़ी चोट ते 'बेवसि' थी किरे ॥५॥

———

प्रातःकाल होते ही दिन, नित्य प्रति हमें एक महान् सन्देश देता रहता है कि " मैं नवीनसे भी नवीन हूँ और प्राचीनसे भी प्राचीन। वह ज्ञानी नही है, जिसने मेरे इस रहस्यको नहीं समझा कि जो मेरे साथ नहीं चलता उसकी दशा बड़ी दयनीय हो जाती है। " कलाकार होकर भी यदि नवीनताके आवर्तनमे परिवर्तित नही होता तो उसका भाग्य ऊँचाईपर चढ़कर भी गिर जाता है ॥५॥

---

१९. गोठनि जो सुधारो

भारत में नएं रंग जो आणींदो निज़ारो, गोठनि जो सुधारो।
हिन देश जो ठाहींदो नमूनोई नियारो—गोठनि जो सुधारो।

अन्दाज़ु वदो ख़ल्क जो गोठनि में वसे थो—बस्त्युनिमें बसे थो
आणींदो असी सेकिड़ो आदममे उजारो—गोठनि जो सुधारो। ।।१।।

उजिड़्चा जे हुनिर हिन्दु जा—धन्धा जे धिकाणा
जागाए वरी तिनि खे जिआरींदो दुबारो—गोठनि जो सुधारो। ।।२।।

बेइल्म रहनि अंध में—ख़ुदि मुल्क जे बधि खां
तइलीम देई आम, कंदो दूरि अंधारो—गोठनि जो सुधारो। ।।३।।

जायूं बि वदियूं छूटि हवा, पर न सफाई—बीमारि झझाई
क़ानून-सिहत खां कंदो हीणनि खे सधारो—गोठनि जो सुधारो। ।।४।।

जो खेट कंदे, पेट बुख्यो, अंग उघाड़ो—जोभन में कुराड़ो
कुड़िमोअ खे देई क़ूतु कंदो मर्दु मतारो—गोठनि जो सुधारो। ।।५।।

पइंचाति मे जा तंगिदिली फूटि थी आणे, छिक ताणमे तणि
मेलाप मुहिबत सां कंदो तींहखां किनारो—गोठनि जो सुधारो। ।।६।।

मन-वृत्ती ग़ुलामीअ जी हटाईदो विद्या सां, स्वराज्य सिख्या सां,
आज़ादु ख़ियालीअ जो वजाईदो नग़ारो—गोठनि जो सुधारो। ।।७।।

'बेवसि' थी छदे दींदो, जदहिं रसम पुराणी, बेकारि सा जाणी,
बर्बादु कंदो वक्तु ऐं पैसो न पियारो—गोठनि जो सुधारो। ।।८।।

———

१९. ग्राम-सुधार

ग्राम-सुधार भारतमें नए रंगका दृश्य उपस्थित कर देगा। ग्राम-सुधार इस देशको नए ढाँचेमे ही बदल देगा।

भारतीयोंकी बड़ी संख्या गाँवों और बस्तियोंमें ही रहती है और ग्राम-सुधार अस्सी प्रतिशत जनतामे सुधार लाएगा ।।१।।

भारतकी जो कलाएँ उजड़ गई और जो धन्धे नष्ट हो गए, विस्मृत हो गए, ग्राम-सुधार उन्हे फिर दुबारा जगाकर जीवन-दान देगा ।।२।।

विद्या-हीन होकर जो अपने देशकी अवस्थासे अनभिज्ञ हो गए हैं और समाचार पत्रोंकी जानकारी से दूर हो गए है, ग्राम-सुधार उन्हें विद्या-दान देकर प्रकाश देगा ।।३।।

मकान भी बड़े है, वायु भी स्वच्छ है, किन्तु सफाई न होनेके कारण बीमारियाँ फैल गई है, ऐसे कमजोरोंको ग्राम-सुधार स्वास्थ्यके नियमोंसे परिचित कराकर शक्तिवान बनाएगा ।।४।।

अपनी खेती-बारी करते हुए भी जो किसान भूखा और नंगा है, जवानीमें ही बूढ़ा बन गया है, ऐसे किसानको ग्राम-सुधार अन्नादि देकर हृष्ट-पुष्ट बना देगा ।।५।।

जो पञ्चायतोंमे फूट और खीचतान पैदा करती है, उस तंगदिलीको ग्राम-सुधार मिलाप और मुहब्बतसे दूर करेगा ।।६।।

ग्राम-सुधार विद्या द्वारा गुलामीकी मनोवृत्ति दूर करेगा और स्वराज्यकी शिक्षा द्वारा आज़ाद विचारोंका नगाड़ा बजाएगा ।।७।।

बेवस (लाचार) होकर जब वह उन पुरानी रूढ़ियोंको वेकार समझकर त्याग करेगा, तब वह अपना प्यारा समय और धन व्यर्थ बरबाद न करेगा—ग्राम सुधार ।।८।।

---

२०. देसी हुनिर

हिन्दुवास्युनि जे हुनिर खे हरि तरहि हिमिथाइबो,
पंहिंजे मुल्की माल खे ई मुल्कमें वरिताइबो,

मुंखे मुहिबत आहि बेहदि पंहिंजे प्यारे देस सां
देस जे धंधे हुनिर हरि कारि खे हिमिथाइबो ।।१।।

वात मुंहिंजे विर्तु धार्यो आ विदेशी माल जो,
मुल्क जो जाणी मिठो, खारो ख़ुशीअ सां खाइबो ।।२।।

भलि हुजे सादो थुल्हो, भलि लाख जी लोई हुजे,
देस पंहिंजे जो खथो, खहुरो ख़ुशीअ सां पाइबो ।।३।।

हिन्दुवास्युनि जी जुड़चल का शइ न जे मुयसर हुजे,
कीअं न कीअं काटे समो उन शइ बिना उकिलाइबो ।।४।।

बे हुनिर जे हिन्दुवासी, थी किरोड़ें व्या कंगाल,
तिनि खे मशग़ूली देई, खाराइबो पहिराइबो ।।५।।

जे उण्यल हूंदी कफ़न में, ग़ैरु हिन्दी तन्दुका,
लाशु मरिणे बैदि 'बेवसि' थी शकी, शरिमाइबो ।।६।।

---

२०. स्वदेशी हुनर

भारतीयोंकी कलाको हर तरहसे उत्साहित किया जाएगा। अपने स्वदेशकी वस्तुओंका ही देशमें प्रयोग किया जाएगा।

हमें अपने देशसे अत्यन्त प्रेम है। अतः देशकी कला, हुनर और प्रत्येक कामको उत्साहित किया जाएगा ॥१॥

हमने विदेशी वस्तुओंके प्रयोग न करनेका व्रत धारण किया है। देशकी खारी वस्तुको भी मीठा समझकर उसे काममें लाया जाएगा ॥२॥

चाहे काला कम्बल हो या लोई, अपने देशकी वस्तु मानकर उसे प्रसन्नतासे ओढा जाएगा ॥३॥

भारतीयों द्वारा निर्मित वस्तु यदि अप्राप्य हो, फिर भी उसके बिना किसी तरह समय काट लिया जाएगा ॥४॥

जो भारतीय बे-हुनर होनेके कारण कंगाल बन गए हैं, उन्हें कोई न कोई काम देकर पालन-पोषण किया जाएगा ॥५॥

यदि हमारे कफ़नमे एक भी अभारतीय तन्तु बुनी हुई होगी, तो मरनेके बाद हमारी लाश लज्जित होकर शरमा जाएगी ॥६॥

२१. गंगा जूं लहिरूं

'कीअं लिखां' जाणां रुगो 'छा लिखां' सलि तूं,
कंदुसि पूरी बांसुरी, फूकींदें गल तूं,
पंधु करणु मूखां पुजे, वाट वठी हलु तूं,
बाझ भर्या बलु तूं, हिन 'बेवसि' ऐ बे ज़ोर जो ॥१॥

तो गल फूक्या फूक लइ, मूं बंस कई पूरी,
काटे कूरु क़लूब मां, गार्यमि गरु गरी,
ख़्वाहिश ख़ुदि ख़ुशबूइ जी, भितर जीअं भोरी,
अची होत होरी, करि हिर्दे में हेज सां ॥२॥

धनु खज़ाने ख़ासि मां, आयुसि खूबु खणी,
चेते अंदरि चाह मां, चोखी चिन्त मणी,
कांग दुन्या जे पोइता, हइ हइ छदियमि हणी,
क़ीमतदारि कणी, मूं कणिका कड़िकाए कई ॥३॥

जातल तां सहजे पवे, अण जातल जी जाण,
दुन्या दिलि जी दर्सिनी, दिलिबर दर्सन काणि,
आछे थी सुख दर्स खे, चहिरे जी चांडाणि,
काकल जी काराणि, दांहं दिए दुख दर्स खे ॥४॥

मूं कयो महिबब सां, मखण जो माणो,
अची विधाई ओचितो, मुहबत मांधाणो,
वञी विलोड़े में पियो टहिकनि जो टाणो,
चङो शल चाणो, चोखो निकिरे चित्त मां ॥५॥

२१. गंगाकी लहरें

'किस प्रकार लिखूँ ?'—जानता हूँ। 'क्या लिखूँ ?' सिर्फ इसे ही तुम बता दो। मै वंशी बजाऊँगा, लेकिन मेरे गाल तुम ही फुलाओगे। मै राह चल सकता हूँ, लेकिन तुम मार्ग-प्रदर्शन करो। हे कृपानिधे ! तू ही इस बेवस और निर्बलका बल है ।।१।।

बाँसुरी बजानेके लिए तुमने मेरे कपोल प्रफुल्लित किए और मैने बाँसुरी बजाई। मैने अपने हृदयसे सारा कलुष धो डाला। हे प्रियतम ! अब आकर मेरे हृदयमे सोल्लास होली खेलो ।।२।।

विशिष्ट धन-निधिसे, बड़ी चाह और चेतनासे अति सुन्दर चिन्ता-मणि ले आया हूँ, किन्तु अफसोस ! सांसारिक मायासे आकृष्ट होकर मैंने उसे फेक दिया। हाय, मैने इस अमूल्य मणिके टुकड़े कर दिए ! ।।३।।

ज्ञातसे अज्ञातका सहज ही ज्ञान हो जाता है। प्रियतमके दर्शनके लिए संसार रूपी हृदय मुकुर है। रूपचन्द्रिका ही सुख प्रदान करती है और संसारको दु:खमय देखनेवालेको कालिमा ही दिखाई पड़ती है ।।४।।

मैने अपने प्रियतमसे मक्खनके लिए मान किया, लेकिन उसने तो अचानक प्रेमकी मथानी ही डाल दी। आलोड़न आरम्भ हो गया और बँध गया ठहाकोंका समा। प्रभु ऐसा करे कि मक्खनकी खासी बड़ी डली निकल आए ।।५।।

विछोड़े ते वसुल जो, जर्दांहि वर्यो वाउ,
मुहिबत माठाई कई, सिकण विञ्गायो साउ,
वेझड़ि खां वि वदो रह्यो, दूरीअ जो धधिकाउ,
पालीअ में रसु पाउ, त आनो शाख अंब मे ।।६।।

बेहदि जे ब्रह्मांडमें, जंहिजो अन्तु न पारु
अटल सृष्टी नेम सां, बधो जंहि संसारु,
दिलि जे देरे ते बण्यो, सो खुदि बधलु बारु,
इश्क़ु अजबु इसिरारु, नींहं बधो हो नाथ खे ।।७।।

मूं जा दुनिया भांइं, सा सूरत सुपेयाँ,
अख्युनि मां अंधिकार जा, कटर जे केयाँ,
साञ्गाहि समुझ सही कर्यो, जे सुमरिणी सोयाँ,
मन-मणिको फेयाँ, त दिलि दर्सन जे दौर में ।।८।।

'मां' पैदा थी 'मां' मंझां, आनंद मंझां आउं,
नींहं विञ्गायो निर्ति खे, नांहि मथां प्यो नाउं,
कर्ता क़ुरिबानीअ संदो, दाढो रिथ्यो दाउं,
गद् गदापुरि जो गाउं, थी छकनु जंहि छिन में छदियो ।।९।।

'मां' पैदा थी 'मां' मंझां, आउं मंझारां आउं
आदो आयुसि आउं जे, प्यो पाछी ते नाउं,
बाग़ु-दाद बग़दाद थ्यो, सुख-नगरु दुख गाउं,
किथि हंसराजु किथु, काउं, छा मोती, मधु छा लगे ।।१०।।

वियोगपर जब संयोगका अधिकार हुआ तो प्रेमने चुप्पी साध ली। उत्सुकताने मुझे बेहाल बना दिया, निकटसे भी विशेष दूरीका भय बना रहा। यदि डालीपरके आममे छटाँक भर रस है तो पाली* में पाव भर रस छलकता है ॥६॥

असीम ब्रह्माण्डमें जिसका न आदि है, न अन्त। जिसने सृष्टिके अटल नियमसे संसारको बाँध लिया, वही हृदय मन्दिरमे अबोध शिशुकी तरह बँध कर बैठ गया। प्रेमका विचित्र चमत्कार है। स्नेहने ही नाथको बाँधा था ॥७॥

जिसे मैने संसार समझा, वह तो मेरे प्रियतमका रूप है। यदि आँखोंसे अन्धकारका दुराग्रह दूर कर दूँ, बुद्धि और ज्ञान (प्रतीति) को सन्तुलित कर यदि माला फेरूँ, (बाहरकी माला छोड़कर) मन का मनका फेरूँ, तो हृदय दर्शनके आनन्दमे समा जाए ॥८॥

'मै' उत्पन्न हुआ 'अहम्' से और आनन्दसे मेरा प्रादुर्भाव हुआ। स्नेहने 'निरति' को दूर कर दिया और 'नास्ति' पर ही नामका आधान हुआ। कर्ताने बलिदान करनेका बड़ा ही विचित्र ढंग रचा, जिसमें छककर प्रसन्नताका गाँव ही त्याग दिया ॥९॥

'मैं' उत्पन्न हुआ 'अहम्' से और 'मै' 'आत्म' से उत्पन्न हुआ। जब मैने 'आत्म' का विरोध किया, तो केवल नाम ही रह गया। बाग़ दाद (न्यायका बाग) बग़दाद (अन्याय) हुआ और सुखनगर दुखनगर बन गया। कहाँ राजहंस और कहाँ काक! क्या मोती और क्या दुर्गन्ध युक्त विष्टा! ॥१०॥

---

* कच्चे आमको सूखी घासमे डालकर पकाया हुआ आम।

पढ़्या चढ़्या कीनकी, अड़िया अणांगे,
पारि न पहुता तारि मां, तर्या न तांघे,
सहस न आंदा सीर ते, साह संदे सांगे,
लताड़्या लांघे, लहिर्युनि लोड़े लोढ़िया ॥११॥

वेई वरंदी कीनकी, तूं ईंदड़ करि उजिरी,
ठहिक्यो ठहिकनि कीन था, गूंदर ऐं गुज़िरी,
सा अगिरी सौ साल खां, जा साइत सच सुधिरी,
'बेवसि' बाति सुथिरी, पर रहिणीअ हेठि रङ्यो रहे ॥१२॥

पढ़े हुए विद्वान चढ़ न सके। उलटे अल्लंघनीयमें अड़ गए। प्रवाहसे पार न पहुँच सके और छिछलेमें भी तैर न पाए। सहस्रों मृत्युके भयसे प्रवाह तक ही न पहुँचे, कई पद-दलित हो गए और कइयोंको लहरोंने डुबो दिया ॥११॥

बीता हुआ समय लौटकर नहीं आता। अतः भविष्यको उज्ज्वल बनानेका प्रयत्न करते रहनेमें ही बुद्धिमानी है। बीता हुआ जीवन और आनेवाला भविष्य ये जीवनके ऐसे दो छोर हैं जिन्हें जोडा नही जा सकता। यह सत्य सदियोंसे यों ही चला आ रहा है। ऐसी स्थितिमें 'बेबसि' जी का यही कहना है कि मनुष्यको सत्प्रयत्नोंमें सतत लीन रहना चाहिए ॥१२॥

———

२२. फ़ना में बक़ा

न बुलबुलि हुस्न-गुल ते भुलु, बहारी बे बक़ा आहे,
निज़ाकत रंग रौनक़ जो, घड़ीअ खिन लइ लक़ा आहे।

चिमन में चेट खां चहि चहि, बटे के रोज़ ही बहि बहि;
खिज़ां चवंदी करे टहि टहि, फ़ना आहे फ़ना आहे ॥१॥

लंवीं थी लाद मां लात्यूं, बिरह वार्यूं करे बात्यूं,
विछोड़े जूं वदियूं रात्यूं सफ़ा चवंदियूं: 'जफ़ा आहे' ॥२॥

पुकारे थो क़फ़सु ख़ाली, हमेशह नाहि ख़ुशिहाली,
फिरी सय्यादु थे, माल्ही, अजबु करिड़ी कज़ा आहे ॥३॥

पटे दिसु गाह मां पतिरो, मथां जंहिं माक जो क़तिरो,
सलींदो ज़िंदगी ख़तिरो, न हस्तीअ खे जटा आहे ॥४॥

चुंहिंब बुल्बुलि दिसी कंचो, चयो गुल: "हाइ बेदर्दी!
हक़ीक़ी इश्क़ अंदरि भी, मिजाज़ीअ जो मुदआ आहे" ॥५॥

ज़मानो आहि ज़ाग़नि लइ, बहार्यो बाग़ु दाग़नि लइ,
चयो बुल्बुलि: निभागनि लइ, धर्यल गुल में दग़ा आहे ॥६॥

फुड़े में समुंडु थ्यो साक़ी, रहे फ़ानीअ अंदरि बाक़ी,
फिरे 'बेवसि' रुगो खाक़ी! मगरि ज़ाती सदा आहे ॥७॥

———————

२२. नश्वरतामें अनश्वरता

ऐ बुलबुल! फूलके सौन्दर्यपर मत भूल। यह आनन्द नश्वर है। सुकुमार और रंग-बिरंगी छटाका वैचित्र्य क्षण भरके लिए है।

बगीचेमें वसन्तकी चकाचौध दो-चार दिनोंके लिए है, फिर पतझड़ ठहाका मारकर कहेगा कि यह सब फ़ना है, नश्वर है ।।१।।

बड़े ही लाड़के साथ चहक रही हो और विरहकी बाते कर रही हो, तब वियोगकी लम्बी-लम्बी राते स्पष्ट कहेंगी—'यह सब ज़फा है।'।।२।।

खाली पिजरा कह रहा है कि वैभव और समृद्धि सदा नहीं रहती। माली बदलकर आखेटक बनकर फिर रहा है। आश्चर्य! यह मृत्यु बडी भयानक है ।।३।।

किसी ओस-बिन्दु युक्त घास-पातको उठाकर देखो। वह बताएगा कि जीवनको भय लगा रहता है और अस्तित्वकी स्थिरता नही है ।।४।।

बुलबुलकी चोंच रूपी कैचीको देखकर, फूलने कहा—"हाय, कठोरता! इश्क हकीकी (प्रभु-प्रेम) मे भी मिजाज़ी।" ।।५।।

ज़माना कौओंके लिए है और बगीचा भी कष्टोंके लिए ही फूला है। बुलबुलने कहा—अभागोंके लिए फूलमे भी धोखा है ।।६।।

ऐ साकी, बूँदमें ही समुद्र समाया हुआ है। नश्वरतामें ही अनश्वरता शेष है। 'बेवसि' तो ख़ाकी (मृत्यु लोक वासी) बनकर विचर रहा है, मगर ज़ाती (प्रभु) नित्य है ।।७।।

२३. सामूंडी सिपूं

बियों पूरू

गुप्तु गंगा ग्यान जी थी अमृती वेले वहे,
जो सचो टोबो हुजे सो भलि असुलु मोती लहे ।
कीअं न थींदो जंगि जारी, धर्म राजनि वासिते ?
जो किताबी क़ैद लइ, थो तख़्त दिलि जे तां लहे ! ॥१॥
मनु त पाणीअ जां हमेशह वहुक हेठाहीं वठे,
पर विवेकी पम्प सां दबिजी मथाहींअ ते वहे ॥२॥
थ्यो उजड़ु दिलि जो मन्दरु दिलिबर जो घरु वैरानु आहि,
कामु राजा जिति वसे किअं रामु वेचारो रहे ? ॥३॥
सख़्तु विल्ह बर्साति में कींहं राति सवड़ियुनि मां उथी,
दिसु त बाहिरि बे अझनि लइ वैलु छा छा थो वहे ! ॥४॥
दर्द जी देवी करे थी मनुष्य खे आला उत्तमु,
थिए तुहनि खां अन्नु आजो गाह में जिअं जिअं गहे ॥५॥
अज ग़रीबनि जूं कखायूं झूपिड़चूं मालिकु घुमे,
थो मढ़ीअ मसिजिद, मन्दर, देवलि, टिकाणे खां टहे ॥६॥
जूणि चक्कर में चवनि उन्नतीअ संदो इमिकानु था,
अक्सिरे बहितरि ठहण लइ जाइ झूनी थी डहे ॥७॥
आत्मा रूपी अंदर मे थी अमरु जोती जगे,
कोष कुहिना प्या बदिलिजनि मौतु थी मिट्टी सहे ॥८॥
मूं पचाए ख़ासि गोढ़ा शैर जा मोती कया,
कथ सराफ़ी परिख वसि, कींझरि कही कोदियूं कहे ॥९॥
हलु त गुल ताज़ा टिर्यल चर्णनि अग्यां 'बेवसि' धर्यूं,
कीन कूमाणलु, कचो थो पुष्पु ठाकुर लइ ठहे ॥१०॥

२३. समुद्र-शुक्तियाँ

सनक दूसरी

अमृत वेला (प्रातःकाल) में ज्ञान गंगाकी गुप्त धारा प्रवाहित होती है। सच्चे गोताखोरको असली मोती प्राप्त होते हैं।

धर्म और राज्योंके नामपर युद्ध क्यों न छिड़ेंगे? जब कि ग्रन्थोंकी कैदमें बन्द होकर (मानवको) हृदय सिंहासनसे उतारते हैं ॥१॥

मन तो पानीकी तरह सदा निम्नगामी रहता है, लेकिन विवेक रूपी पम्पके जोरसे ऊँचाईपर उठता है ॥२॥

हृदय-मन्दिर उजाड़ हो गया है और प्रियतमका घर वीरान है। जहाँ काम (तृष्णा) राजाका निवास हो, वहाँ बेचारा राम कैसे रह सकता है॥३॥

किसी रात सख़्त सर्दी और बारिशमें अपनी सौर (लिहाफ़) से उठकर देखो कि बाहर निराश्रितोंके ऊपर क्या-क्या अत्याचार हो रहे हैं ॥४॥

दर्दकी देवी ही मनुष्यको उच्च बनाती है। तुषोंसे अन्न तभी अलग होता है जब वह माँड़ा जाकर कष्ट सहता है ॥५॥

आज प्रभु गरीबोंकी घास-फूसकी झोपड़ियोंमे घूम रहा है और मन्दिर, मसजिद, टिकाने,* देवल और मढ़ी आदि से विरत हो गया है ॥६॥

योनियोंके चक्कर में उन्नति की सम्भावना मानी जाती है। पुराना मकान सुन्दर बननेके लिए ही टूटता है ॥७॥

हृदयमें आत्मारूपी अमर ज्योति जग रही है, पुराने कोश (आवरण) बदलते रहते है, मृत्यु तो मिट्टी (शरीर) ही प्राप्त करती है ॥८॥

मैंने विशेष अश्रुओंको पकाकर ही काव्यके मोती निर्मित किए हैं। मूल्यांकन तो सराफके हाथ है, चाहे वह उसे मूल्यवान समझे या दो कौड़ियोंका कहे॥९॥

चलो, ताजे खिले हुए फूल चरणोंमें अर्पित करें, मुरझाया हुआ फूल या अविकसित पुष्प ठाकुरको अर्पित करना उचित नही है ॥१०॥

---

*सिन्धियोका वह पूजास्थान जिसमे गुरु नानकके 'गुरु ग्रन्थ साहब' की स्थापना की जाती है। इसे 'टिकाने' के विशिष्ट नामसे पुकारा जाता है।

बाहों पूरु

वसीं वेझो वन्युनि में थो, पिरीं पर्दो वरी छा जो ?
बणी ख़ुदि प्रानु प्राननि जो, विचों वेछो वरी छा जो ?
जिगिर में जाइ ख़ुदि जोड़े, बियाईअ खे छदियुइ बोरे,
करे दिली में अंदरि देरो, वुई दोखो वरी छा जो ? ॥१॥
चमक जे आहि चहिरे जो, सियारनि ऐं सितारनि में,
न क़हिरी राति कारीअ में, पवे पाछो वरी छा जो ? ॥२॥
पुठी देई अची वेई अंधारीअ जे अंदरि धरिती,
वगरना साफ़ु सूरिज ते ककौ कारो वरी छा जो ? ॥३॥
मंडल खणंदा वतनि तारा जुगनि खां खा़ल में किरंदा,
जिते हरि जाइ, मर्क़जु थ्यो उते घेरो वरी छा जो ? ॥४॥
हिते नाहीं किथे नाहीं, हींअर नाहीं कदहिं नाहीं,
जे गदु नाहीं त हदि नाहीं, मिलण मोक़ो वरी छा जो ? ॥५॥
जगत जे आदि खां अग थी चुकी 'तो मूं' संदी शादी,
नएं सिरि मेलु मिलण जो सजरु सायो वरी छा जो ? ॥६॥
न हाजत का हुज़ूरीअ में सिफ़ारत या वकालत जी,
सिधी शह-राह मुहिबत में वसीलो ब्यो वरी छा जो ? ॥७॥
मुहब्बत रे न जाणणु थ्ये, न जाणणु रे मुहिबत थ्ये,
विझनि था ग्यान भगितीअ में फदो फेरो वरी छा जो ? ॥८॥
बणी हरि चीज़ में चश्को करे हैरानु हिरिखाई,
अजाइबु ऐश दुनिया खां मिठा ! मोशो वरी छा जो ? ॥९॥
फिटाए फ़ूह में हिकिड़्यूं, रचीं रांदियूं नएं सिरि ब्यूं,
करे जो जोड़ तंहिखे टोड़ में सर्फ़ो वरी छा जो ? ॥१०॥
किलेशनि या कि ऐशनि में हिकु आहीं न हक़ु आहीं,
जिते भी जाइ दीं जानी, ख़ुशी खतिरो वरी छा जो ? ॥११॥
सघे बाणी न बधि जाणी, वरी वाणी जितां विरिचे,
जो रोशनु पाण तंहिते जाण जो जल्वो वरी छा जो ? ॥१२॥
मिलण जे आसिरे 'बेवसि' हयातीअ खे हलायां थो
रहे जे आस अण पूरी निधरि नातो वरी छा जो ? ॥१३॥

सनक बारहवीं

तुम मेरी पुतलियोंके भी निकट रहते हो, फिर प्रियतम ! यह पर्दा कैसा ? मेरे प्राणोके भी प्राण बने हुए हो, फिर यह भेद कैसा ?

मेरे हृदयमें स्वयं ही स्थान बनाकर द्वैतको दूर कर देते हो। हृदयमे डेरा डालनेके बाद यह दुई और दोखा कैसा ? ।।१।।

यदि ग्रह और नक्षत्रोंमें तुम्हारे मुखकी झलक चमकती है, तो इस भयानक काली रात्रमे यह किसकी प्रतिछाया है ? ।।२।।

इस अँधेरेमे पृथ्वी पीठ देकर आ गई है, वरना इस प्रकाशपूर्ण सूर्यके ऊपर अन्धकार किसका ? ।।३।।

शताब्दियोंसे आकाश-मण्डलमे नक्षत्रगण उगते और टूटकर गिरते रहते हैं। जहाँ प्रत्येक स्थानपर भेट होती हो वहाँ फिर घेरा किसलए? ।।४।।

यदि यहाँपर नही हो,तो कही नही हो।अब नही हो तो कदापि नही हो।मेरे साथ नही हो तो बिलकुल ही नही हो।मिलनेका अवसर फिर किसका?।।५।।

सृष्टिके प्रारम्भके पहले ही 'तेरा-मेरा' विवाह हो चुका था, फिर नए सिरेसे मेल-मिलापकी यह तैयारी कैसी ? ।।६।।

तुम्हारे हुजूरमें सिफारत और वकालतकी कोई आवश्यकता नही है। प्रेमका सीधा राजमार्ग खुला है। दूसरेका आश्रय फिर किसलिए ? ।।७।।

प्रेमके सिवा परिचय (ज्ञान) नहीं और ज्ञानके सिवा प्रेम नही, फिर इस ज्ञान और भक्तिमे भेद क्यों डाला जाता है ?।।८।।

प्रत्येक वस्तुमे रस बनकर ललचाकर हैरान करते हो, फिर इस विचित्र वैभव-भरी दुनियासे किनारा किसका ? ।।९।।

कुछको भरी जवानीमे वीरान कर नए सिरेसे दूसरे खेल रचते हो। जो निर्माण कर सकता है, उसको विनाशमें मितव्ययिता कैसी?।।१०।।

कष्ट और विलासमे एक हो तो सत्य हो। प्रियतम कही भी स्थान दो उसमें भय और डर किसका ? ।।११।।

जहाँ तुम्हे (ब्रह्मको) बुद्धिसे, ज्ञानसे, जाना नही जाता, जहाँ वाणी न जानकर लौट आती है, जो स्वयं प्रकाश है, उसपर ज्ञानका यह जलवा किसलिए ?।।१२।।

तुमसे मिलनेकी साधपर ही इस जीवनको चलाए जा रहा हूँ। यदि आशा अपूर्ण रह जाए तो यह सम्बन्ध फिर किसलिए ? ।।१३।।

तेहों पूरु

छा कंदी तदिबीर उति, जिति सख़्तु दिलि सयादु आहि,
बुल्बुल्युनि सां बाग़ में अॼ अण पुछो बेदादु आहि,

बूंद शबनम में दिसो नक़ुली हयातीअ जो किसी,
ज़िंदगी लहिज़े अंदरि आबादु ऐं बरिबादु आहि ॥१॥

ख़ासि लागापो तड़े जो इश्क़ आमीअ में अड्यो,
सो बदनु दुनिया बिन्ही जो बंद में आज़ादु आहि ॥२॥

मर्म जे पर्दे मां निकिती दांहं नाज़िकु दर्द जी,
कहिड़ी कहिड़ी तोंहिंजे हेठां ऐ फ़लक फ़रियाद आहि ॥३॥

श्याम जी मुरिली वजे शेवा मन्दरमें धूम सां,
अॼ न बिंदिरावन संदो ऊधो ! अग्यों सो दादु आहि ॥४॥

चश्म रोशन लाइ हरिजा फैलसूफ़ी थी नचे,
एनकी अखि लइ मगरि केदो किताबी वादु आहि ॥५॥

फ़िक्र सां फोला कजे हर हंधि शीरीं थी लभे,
पर असां में तो जिहो जज़िबो किथे फरिहाद ! आहि ? ॥६॥

ख़ुशि लक़ा दुनिया मुंहं तां लाहि दुख दर्सी नक़ाबु,
सुख दर्स लइ हूर दुनिया दिलिरुबा दिलि शादि आहि ॥७॥

छा संदसि तश्बीह 'बेवसि' माह ताबां से कजे,
रूइ ख़ूबां आशिक़नि लइ ख़ुदि ख़ुदा आबादु आहि ॥८॥

सनक तेरहवीं

जहाँ आखेटक बड़ा कठोर हृदय है, वहाँ युक्ति किस कामकी। आज बुलबुलोंके साथ निश्चय ही बड़ा अत्याचार है।

ओस-कणमें नकली जीवनका आभास देखो। यह जीवन एक ही क्षणमे आबाद और एक ही क्षणमे बरबाद हो जाता है ।।१।।

विशेष सम्बन्धका त्याग कर जो विश्व प्रेममे मग्न है, वह इह-लोक और परलोकके बन्धनोंसे मुक्त है ।।२।।

रहस्यके परदेसे दर्दकी बड़ी सुकोमल कराह निकली। ऐ आकाश! न मालूम तुम्हारे नीचे क्या-क्या फ़रियाद है ! ।।३।।

सेवाके मन्दिरमे बड़ी ही धूमसे श्यामकी मुरली बज रही है, लेकिन उद्धव ! आज वृन्दावनमें वह न्याय नहीं है ।।४।।

ज्ञानकी आँखोंके लिए प्रत्येक स्थानमे दार्शनिकता नाच रही है, लेकिन ऐनककी आँखवालोंके लिए ग्रन्थोंका वितण्डावाद है ।।५।।

यदि ध्यान और चिन्तासे खोजकी जाए तो प्रत्येक वस्तुमे माधुर्य मिलता है,लेकिन ऐ फरहाद! तुम्हारी जैसी भावुकता और जज़बा हममे कहाँ? ।।६।।

इस सुखपूर्ण संसारके मुखसे दु खपूर्ण आवरण हटा दे, तो यह संसार रूपी प्रेमिल अप्सरा आनन्दमय है ।।७।।

क्या उसकी उपमा चन्द्रमासे दी जाए? लेकिन प्रेमियोंके लिए सुन्दरतम प्रभु स्वयं विराजमान है ।।८।।

———————

चोदिहों पूरु

गुप्तु घेड़ दिलि जे मन्दर में प्रेम पूजा वासिते,
साणु खणु श्रद्धा फुलनि मुठि, भोग भेटा वासिते।
मिलु हली महराज खे मुहताज जे अहित्याज में,
गोलि का दर्दी दुखी दिलि श्याम शेवा वासिते ॥१॥
कांग दुनिया ते न हणु हीरे कणी चिन्तामणी,
दमु मिल्यो आदमु बण्यें आतम उत्तमता वासिते ॥२॥
मुंझु न मज़हब मुख़्तिलफ खां घणि अंदरि घबिराइजी,
बाग़ दुनिया जा जुदा गुल सूंहं सोभ्या वासिते ॥३॥
टीं पटी तो तुर्तु तदहीं मूं जर्दीहि बट्यूं बई,
आहे बीनाई बराए चश्म बीना वासिते ॥४॥
चाह केरे चोट तां फेरे थी कोटां कोट में
आहि ख़्वाहिश में ख़राबी मोट मंशा वासिते ॥५॥
हर रविश अंदरि हवसु, दरिकारि हरिकारि में,
तो बिना हर चीज़ दुनिया चाह चिन्ता वासिते ॥६॥
दीद दूरी थी पसाए पर न वेझड़ि ते वहे,
कोन थो दारूं सुझे हिन बिंद मोत्या वासिते ॥७॥
लाल अंदरि लालु हो, लालनु लिकाए किअं सघे,
आ उछल आनंद जी, ब्यो नाउं माया वासिते ॥८॥
दाइरे इमिकान खां तूं लामकानु बाहिरि रहीं,
आहि आखेरो न कींहि भी जाइ अनका वासिते ॥९॥
घुरु न हरगिज़ घुर्ज अंदरि नाक़साईअ जो निशानु,
फ़िक्रु 'बेवसि' करि फ़ना तलबो तमन्ना वासिते ॥१०॥

सनक चौदहवीं

प्रेम-पूजाके लिए हृदय मन्दिरमें कई गुप्त प्रवेश-द्वार हैं, भोग धरने और भेंटके लिए अपने साथ श्रद्धाकी पुष्पाञ्जलि लो।

महाराज (प्रभु) से किसी गरीबकी आवश्यकता पूर्तिमें ही चलकर मिलो। श्यामकी सेवाके लिए किसी दर्द-भरे पीड़ित दिलको ढूँढ़ो ।।१।।

इस काक रूपी संसारपर चिन्तामणि रूपी हीरा कभी मत फेंको, दम प्राप्त होनेपर ही आदम बने हो, आत्मिक उन्नतिके लिए ।।२।।

विभिन्न धर्मोंका बाहुल्य देखकर न घबराओ। संसार रूपी बगीचेके भिन्न-भिन्न फूल शोभा और सुन्दताके लिए हैं ।।३।।

जब मैंने दोनों(मिजाज़ी)आँखें बन्द की,तब तूने मेरा तीसरा नेत्र(प्रज्ञाचक्षु) खोल दिया। ज्ञान-चक्षुओं द्वारा ही सच्चा दृश्य दृष्टिगोचर होता है ।।४।।

तृष्णा ऊपर उठाकर फेंक देती है और करोड़ों योनियोंमे घुमाती रहती है। मनुष्यको गिरानेवाली वासना ही तो बुरी है ।।५।।

प्रत्येक कार्यके अन्दर तृष्णा और वासना समाई हुई है। तुम्हारे सिवाय प्रत्येक वस्तुकी इच्छा तृष्णा रूपी चिन्ताके लिए है ।।६।।

दृष्टि दूरीको ही दिखाती है, निकटताको नही। मुझे इस मोतिया-बिन्दके लिए कोई औषधि नही सूझती ।।७।।

लालके अन्दर भी लाल था,जिसे लाल (प्रियतम) छिपा न सका ।(सृष्टिका उद्भव) उसके आनन्दकी तरंग है और माया उस आनन्दका नाम है ।।८।।

ऐ बेघर (स्थानहीन) ! तू स्थान के घेरेसे बाहर है। 'अनक़ा' पक्षीके लिए न तो कहीं घोंसला है और न स्थान ।।९।।

कभी कुछ न माँगों, क्योंकि इस माँग (आवश्यकता) के अन्दर ही निकृष्टताके चिह्न हैं।अत:तृष्णा और वासनाको फना (नाश) कर दो।।१०।।